2.4.

104

गोकुलदास-संस्कृत-ग्रन्थमालायाः
तृतीयं पुष्पम्

महाकविश्रीभासप्रणीतं

कर्णभारम्

सरला-हिन्दी-व्याख्या, आंग्लानुवाद, टिप्पणी, भूमिकादि सहित

व्याख्याकार—
डा० सुधाकर मालवीय
एम. ए., पीएच. डी., साहित्याचार्य
संस्कृत और पालि विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्राक्कथन—
डा० पद्मा मिश्र
एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी), पीएच. डी. (लंदन)
एल. टी, शास्त्री (पंजाब), काव्यतीर्थ
आचार्य (सांख्ययोग पुराणेतिहास)
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्भा ओरियन्टालिया
वाराणसी १९७५ भारत

प्रकाशक
चौखम्भा ओरियन्टालिया
प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक विक्रेता
पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२
गोकुल भवन के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१, भारत
फोन : ६२६९५ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

प्रथम संस्करण [illegible]
मूल्य [illegible]

चौखम्भा संस्कृत [illegible]
वाराणसी

मुद्रक—विद्याविलास प्रेस, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी

GOKULDAS SANSKRIT SERIES
No. 3

KARṆABHĀRAM

[KARṆA'S BURDEN]

OF

BHASA

Edited with Hindi & English translation, Critical Introduction, Explanatory Notes and Six useful Appendices

By

Dr. SUDHAKAR MALAVIYA
M. A., Ph. D., Sahityacarya
Department of Sanskrit & Pali
Banaras Hindu University

and

Forward

By

DR. PADMA MISRA
M. A. (Sanskrit, Hindi), Ph. D. (London), L. T., Śāstrī (Panjab)
Kāvyatīrtha, Ācārya (Sānkhya Yoga Purāṇetihāsa)
Professor of Sanskrit
Banaras Hindu University, Varanasi

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
VARANASI 1975 INDIA

Publishers :
CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32
Gokul Bhawan K. 37/109, Gopal Mandir Lane
VARANASI–221001, INDIA
Phone : 62695 Telegram : Gokulotsav

© *Chaukhambha Orientalia, Varanasi*

First Edition 1975
Price Rs. 31/-

Printers—Vidya Vilas Press, Gopal Mandir Lane, Varanasi

FOREWORD

Bhāsa occupies a unique place among Sanskrit dramatists. One of his great qualities is the selection of themes of lasting human interest that leave a deep impression on the mind of the audience and readers.

Karṇabhāra, one of his short plays is an illustration of this. It depicts Karṇa, one of the most fascinating characters of the Epics, at a crucial time of his life. Hemmed in by his promise to his mother and deprived of his mastery over arms he sets out to wage war against Arjuna in a dejected mood. Yet, convinced of the enduring quality of *dāna,* he does not hesitate to give away his one remaining support—the *kavaca* and *kuṇḍala* he was born with—to satisfy the supplicating Brāhmaṇa, and is not even dismayed by the deception practised by Indra. Karṇabhāra would thus appear to have become Karṇasāra.

Dr. Sudhakara Malaviya is to be commended for his efforts to make Karṇabhāra popular by bringing out this edition. He has made it extremely useful for the students by giving prose order, meaning of each word separately, explanatory notes, Hindi and English translations. Glossary, definitions of metres and collection of *subhāṣitas* that occur in the play add to the usefulness of this edition. A critical introduction supplies all available information and appreciation of Karṇabhāra.

B. H. U., Varanasi
12-5-75

Padma Misra

दो शब्द

महाकवि भास कृत कर्णभार नामक एकाङ्की नाटक का प्रस्तुत संस्करण विश्वविद्यालय तथा सामान्य विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही मुख्यरूप से लिखा गया है। इस संस्करण में संस्कृत का मूल पाठभेदों के साथ प्रस्तुत है। तत्पश्चात् उसका अंग्रेजी और हिन्दी अनुवाद श्लोकों की विस्तृत व्याख्या के साथ प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के अन्त में विशेष उपयोगी छः परिशिष्ट दिए गए हैं। हरसम्भव प्रयास इस बात का किया गया है कि छात्रों के लिए उपयुक्त सभी बातों का संग्रह इस संस्करण में हो। संस्कृत श्लोकों की व्याख्या में तथा हिन्दी या अंग्रेजी अनुवाद में अथवा मूल में भी जो अपनी ओर से जोड़ा गया है उसे [ ] इस प्रकार के कोष्ठक में रक्खा गया है। किन्तु मूल में इसी तरह के कोष्ठक में प्राकृत संदर्भों की संस्कृत छाया भी दी गई है।

इस पुस्तक के सम्पादन में मुझे पं० गणपति शास्त्री एवं प्रो० देवधर के संस्करणों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। प्राक्कथन लेखन के लिए मैं काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग की प्रोफेसर गुरुवर डा० पद्मा मिश्र का अत्यन्त आभारी हूँ। पूज्य पिता पं० रामकुवेर मालवीय (साहित्यविभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय) के पुनीत चरणों में बैठकर भास के नाटकों का जो आस्वाद मैं ले पाया था उसे साहित्य पाथेय में देखते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है। वस्तुतः इन सब का श्रेय चौखम्भा ओरियन्टालिया के संस्थापक सेठ मोहन दास जी को ही है जिन्होंने इस कार्य के लिए मुझे प्रोत्साहित किया।

दीपावली १९७५
३१/२१ लंका, वाराणसी–५

सुधाकर मालवीय

भूमिका

महाकवि भास

१९०९ ई० के पूर्व विद्वानों की धारणा थी कि महाकवि कालिदास ही संस्कृत साहित्य के सर्व प्रथम नाटककार हैं।[1] किन्तु टी० गणपति शास्त्री द्वारा त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित भास के ग्रन्थों ने विद्वानों के सामने एक नई धारणा प्रस्तुत की। समस्या यह थी कि हस्तलेखों में कवि के नाम का निर्देश ही नहीं था। अतः इन तेरह रूपकों को भास की कृतियाँ क्यों कर माना जाय? जिन तर्कों के आधार पर ये भास की कृतियाँ मानी गई हैं वे इस प्रकार हैं—

आकृति-साम्यत्व का आधार

१. इन रूपकों में प्रारम्भिक पूर्वरंग को (मात्र कर्णभार को छोड़कर) प्रस्तावना न कहकर स्थापना के नाम से अभिहित किया गया है।

२. इन रूपकों में आदि तथा अन्त प्रायः एक समान है।

(i) अनेक रूपकों के प्रारम्भ में मुद्रालंकार द्वारा पात्रों को अभिहित किया गया है।

(ii) प्रायः सभी रूपक 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इन्हीं शब्दों से प्रारम्भ होते हैं।

(iii) इनमें से अधिकांश रूपकों में भरतवाक्य एक जैसा ही है जैसे—'इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।' या तो यह मिलता है, अथवा इसी प्रकार का कोई अन्य पद्य। प्रायः सभी में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' यह अवश्य प्रयुक्त हुआ है।

३. इनमें नाट्यशास्त्र के नियमों का पूर्णतया पालन न होना भी यह सूचित करता है कि इनका कर्ता कोई एक व्यक्ति ही है।

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—मैकडानल।

४. इन रूपकों में भूमिका बहुत छोटी है। प्रारम्भिक संवाद के वाक्य भी प्रायः समान ही हैं, जैसे एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि·····आदि।

विषय-सम्यत्व का आधार

१. इन सभी नाटकों में एक मुख्य समानता यह है कि इनकी भाषा और शैली समान है। कितने ही शब्दों, वाक्यों, श्लोकों और पदों को विभिन्न नाटकों में दुहराया गया है। वही उपमा और उत्प्रेक्षा जो एक नाटक में आ गई हैं दूसरों में भी मिलती हैं। सूक्थंकर ने ऐसे समान वाक्यों आदि की पूरी सूची दी है जिनकी संख्या १२७ है।[1]

२. इन रूपकों में अनेक अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं। जैसे आप्रच्छ का प्रयोग परस्मैपद में है।

३. अनेक नाटकों में नाटकीय व्यङ्ग्य (पताका-स्थानक) का प्रयोग मिलता है।

४. कतिपय अप्रचलित शब्दों का प्रयोग इनमें प्राप्त होता है। जैसे सुवदना, दण्डक आदि। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है।

५. कुछ नाटक एक दूसरे से सम्बद्ध से जान पड़ते हैं जैसे—स्वप्न-वासवदत्तम् प्रतिज्ञायौगन्धरायण का ही उत्तरार्द्ध लगता है। इसी प्रकार प्रतिमा नाटक भी अभिषेक से सम्बद्ध है।

जिन तर्कों के आधार पर विद्वान् भास के कर्तृत्व का विरोध प्रस्तुत करते हैं उनका संकेत इस प्रकार है—

१. इन रूपकों में कवि का नाम नहीं दिया गया, अतः यह भास की रचनाओं पर आधृत किसी अन्य कवि की कृतियाँ हैं।

२. इनमें सूत्रधार नान्दी के पश्चात् प्रवेश करता है। यह विशेषता इन तेरह रूपकों की ही नहीं, अपितु सामान्यतः समस्त दक्षिण भारतीय रूपकों की है।

३. इनमें उपलब्ध नाट्यकला भास की ही अपनी नहीं, अपितु वैसी नाट्य कला तो दक्षिण भारत के सभी रूपकों में मिलती है।

---

1. Studies in Bhasa—Dr. Sukthankar

४. इन रूपकों में भरतमुनि के नाट्यशास्त्रीय नियमों का पूर्णतया पालन न होना भी इनकी प्राचीनता का द्योतक नहीं है, क्योंकि निषिद्ध दृश्य तो पश्चकालीन रूपकों में सामान्यतः अधिक प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से अपना लिये गये हैं।

५. जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, उसे भी ठोस आधार नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अपाणिनीय प्रयोग तो आर्ष काव्य, पुराणसाहित्य तथा अत्यन्त पश्चवर्ती अनेक ग्रन्थों में भी बिखरे मिलते हैं। दूसरे, प्राकृत के प्राचीन प्रयोग मलयालम हस्तलेखों की विशेषता है। इसके अतिरिक्त, रूपकों की प्राकृत हस्तलेखों के लेखन स्थल एवं काल पर निर्भर है, न कि नाट्यकार के काल पर।

६. बाद के लेखकों ने जो पद्य उद्धृत किए हैं, उन्हें उन्होंने भास से संबद्ध नहीं बताया है।

७. सुभाषित ग्रन्थों में उपलब्ध कुछ पद्य त्रिवेन्द्रम् में मिले रूपकों में नहीं मिलते।

८. महामहोपाध्याय के० शास्त्री प्रभृति विद्वानों ने इन्हे 'आश्चर्य चूड़ामणि' प्रतिमा, तथा 'अभिषेक' की एकत्र प्राप्ति के 'आधार पर' शक्तिभद्र की रचनाएँ माना है।

९. कुछ विद्वानों ने शूद्रक को भास से अभिन्न सिद्ध करते हुए 'मृच्छकटिक' 'बालचरित' 'अभिसारक' तथा 'वत्सराजचरित' को शूद्रक की कृतियाँ माना है। कुछ ने 'चारुदत्त' को 'मृच्छकटिक' का अभिनयोचित संक्षिप्त संस्करण माना है।

१०. डा० बार्नेट इन रूपकों को भास का न मानकर पाण्ड्य राजाओं के सभा कवियों द्वारा लिखित मानते हैं,[1] जब कि अन्य विद्वान् इनके कर्तृत्व का श्रेय पल्लव-नरेशों के सभा कवियों को देते हैं।

११. रामावतार शर्मा के अनुसार कुछ रूपक भास प्रणीत अवश्य हैं किन्तु सब रूपकों की रचना भास ने नहीं की थी।[2]

---

1. J. R. A. S. 1919, p. 233, 587.

२. शारदा' संस्कृत पत्रिका (प्रथम वर्ष की प्रथम पत्रिका)

१२. केरल प्रदेश में ही इनकी उपलब्धि होने से कुछ विद्वान् इन्हें किसी केरल देशीय नाटककार की कृतियाँ मानते हैं। डा० कुन्हन राजा ने इनपर केरल का प्रभाव दर्शाया है और 'चारुदत्त' में केरलीय उत्पत्ति के चार शब्दों को प्रस्तुत किया है। डॉ० टामस ने इस मत का विरोध किया है। कुप्पुस्वामी शास्त्री ने 'संबन्ध' शब्द के आधार पर इनरूपकों में मलाबार के 'सबन्ध' विवाहों की ओर संकेत माना है, किन्तु आर० कवि ने इसका विरोध किया है। वस्तुतः ये रूपक केरल के परम्परानुयायी अभिनेता चाक्यारों के भाण्डार का एक अंग हैं। पिशरोतियों का कथन है कि इन रूपकों के प्रस्तावना भाग बाद में जोड़ दिए गए थे, जब कि मुख्य दृश्यों में मौलिक रूपकों को स्थानीय रङ्गमञ्च की आवश्यकता के अनुकूल ढाल कर अथवा संक्षिप्त करके सुरक्षित रखा गया है।

भास के अस्तित्व के प्राचीन आधार

भास के व्यक्तित्व की महिमा का दर्शन हमें प्राचीन कवियों द्वारा प्राप्त होता है। कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास का नाम बहुत आदरपूर्वक लिखा है।[1] बाण (सप्तम शती) ने भास की प्रशंसा करते हुए उनके नाटकों को सूत्रधार से प्रारम्भ होनेवाला बताया है।[2] भामह (सप्तम शती) ने 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' की मूल कथा की आलोचना के साथ-साथ इसके एक प्राकृत पद्य को भी संस्कृत रूप में उद्धृत किया है।[3] दण्डी (सप्तम शती) ने बालचरित तथा चारुदत्त में उपलब्ध पद्य लिम्पतीव तमोङ्गानि के अलंकार की पाण्डित्यपूर्ण मीमांसा की है।[4] वाक्पतिराज (अष्टम शती) ने भास को जलणमित्र (ज्वलन-

---

१. प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः।

२. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥ हर्षचरित श्लोक १५

३. -हतोऽनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम'-काव्यालंकार अध्याय ४

४. काव्यदर्श २. २२६

मित्र) अर्थात् अग्नि का मित्र कहा है ।[1] वामन (नवम शती) ने भास के तीन उद्धरण दिए हैं ।[2] राजशेखर (दशम शती) ने स्वप्नवासवदत्तम् रूपक को भास कृत सर्वोत्कृष्ट रूपक घोषित किया है ।[3] अभिनवगुप्त (दशम शती) ने भरतनाट्य विवृत्ति में स्वप्नवासवदत्तम् का उल्लेख किया है ।[4] इसके अतिरिक्त 'लोचन' में इस रूपक से एक पद्य भी उद्धृत है, जो सम्प्रति मुद्रित ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है ।[5]

भोजदेव (एकादश शती) ने स्वप्नवासवदत्तम् का उल्लेख किया है ।[6]

---

१. भासम्मि जलणमित्ते कुंतीदेवे अ जस्स रघुआरे ।
सौवन्वे अ वन्धम्मि हारीयन्द्रे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौवन्धवे च वन्धे हारीचन्द्रे च आनन्दः ॥] 'गउडवह'

२. (i) शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन भामिनि । काव्यालंकारसूत्रवृत्ति ५.३
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ स्वप्नवासवदत्तम् अंक ४
(ii) यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् । प्रतिज्ञायौगन्धरायण ४.२
(iii) यासां वलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां,
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः । काव्यालंकार १.५
तास्वेव पूर्ववलिरुह्यवाङ्कुरासु चारुदत्त १.२
बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥

३. भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥ काव्यमीमांसा

४. क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम् ।
अभिनवभारती १.७४ स्वप्न० अंक २

५. सञ्चितपक्षकवाटं नयनद्वारं स्वरूपतडनेन ।
उद्घाट्य सा प्रविष्टा हृदयगृहं मे नृपतनूजा ॥

६. स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः ! पद्मावतीरहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयनीये सुष्वाप । वासवदत्ता च स्वप्नवदस्वप्ने ददर्श । स्वप्नायमानश्च वासवदत्तामावभाषे ।
शृङ्गारप्रकाश, स्वप्नवासवदत्तम् पंचम अंक का संक्षेप ।

रामचन्द्र, गुणचन्द्र (बारहवीं शती) ने स्वप्नवासवदत्तम् का एक श्लोक उद्धृत किया है।[1] आलंकारिक जयदेव (१२ शती) ने प्रसन्नराघव की प्रस्तावना में इन्हें कविता-कामिनी का हास कहा है।[2] इस प्रकार प्राचीन उद्धरणों से इन नाटकों की प्रामाणिकता में संदेह का कोई कारण नहीं होना चाहिए। ये नाटक एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। यही नहीं बल्कि इनकी भाषा शैली आदि एक सी ही है। अतएव ये नाटक भास रचित ही हैं।

भास का समय

भास के काल के विषय में निश्चय के साथ कहना कठिन है। कालिदास के उद्धरण से अनुमानतः उनका अस्तित्व कालिदास के पहले होना चाहिए। कालिदास का समय प्रायः प्रथम शताब्दी ई० पू० विद्वान् मानते हैं। इसी आधार पर ही पं० गणपति शास्त्री उनका काल तृतीय शती ई०पू० निश्चित करते हैं जब कि पाश्चात्य विद्वान् इन्हें तृतीय शती में रखते हैं। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में भास का एक श्लोक आप्तवाक्य के रूप में उद्धृत किया है।[3] चाणक्य चन्द्रगुप्त के मंत्री थे। चन्द्रगुप्त ३२१ ई० पू० में राजगद्दी पर आसीन हुए। भास का समय उनसे कम से कम ५० वर्ष पूर्व मानना उचित है। लोकमान्य तिलक के मतानुसार भास; कालिदास के पूर्ववर्ती थे, और उनका स्थिति काल दूसरे या तीसरे शतक के बाद का कदापि

---

१. यथा भास कृते स्वप्नवासवदत्ते -
शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः।
पदाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता॥
नाट्यदर्पण

२. भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः। प्रसन्नराघव

३. नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥
कौटिल्य अर्थशास्त्र, १०.३; प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ४.२

नहीं है।[1] 'भगवद्गीता' के आदि में 'गीता ध्यान' नाम से नौ श्लोकों की चर्चा करते हुए लोकमान्य का यह भी कथन है कि इन नौ श्लोकों में जो भीष्मद्रोणतटाजयद्रथ जला श्लोक उद्धृत है, वह भास कवि के 'ऊरुभंग' का आदि श्लोक है।[2] कुछ विद्वानों ने भास को नारायण काण्व का समकालीन सिद्ध किया है।[3] नारायण काण्व का समय ५३–४१ ई० पू० माना गया है। वेलवल्कर के अनुसार शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त से बहुत प्रभावित है अतः भास का समय तीसरी शती ई० पू० होना चाहिए।[4] पाश्चात्य विद्वान् कीथ ने भास का समय द्वितीय शती माना है। विन्टरनित्स चतुर्थ शती मानते हैं।

बाण का समय प्रायः षष्ठशतक का अन्त निश्चित हो चुका है। अतः भास का समय बाण के बाद मानना ठीक नहीं है। भास ने प्रद्योत, दर्शन और उदयन को समकालीन चित्रित किया है। स्मिथ के अनुसार दर्शक और उनके उत्तराधिकारी का राज्य काल ४७५ ई० पू० से ४५–ई० पू० के मध्य था।[5] इस प्रकार भास के काल की आदिम सीमा ४५० ई० पू० से पहले भी नहीं मानी जा सकती। किन्तु पूर्वोत्तर सीमा निर्धारिण के बावजूद भी भास के निश्चित समय के निर्धारण में बड़ा ही विद्वानों में मतभेद है। भास के भरतवाक्यों में आए 'राजसिंह' शब्द से ऐसा मालुम पड़ता है कि भास उपर्युक्त तीनों राजाओं में से किसी एक के राज कवि थे। स्वप्नवासवदत्तम् और प्रतिज्ञायौगन्धरायण से ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि भास महा-

---

१. लोकमान्य तिलक, गीता रहस्य, ५६०

२. वही, ५६१

3. J. O. A. S. O. Bengal, Jaisawal, p. 259, 1913

4. S. K. Velwalkar, The Relationship of Śudraka's Mṛchakatika to the cārudatta of Bhāsa, Presy of the first oriental conference 1919, Vol 11 p. 189–204.

5. Early History of India, p. 38–39.

राज उदयन को अमर बनाना चाहते हैं। अतः भास को उदयन (४५० ई०पू०) का आश्रित राजकवि मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिए।

कथा स्रोतों के आधार पर भास के नाटकों का विभाजन हम इस प्रकार कर सकते हैं—

१. स्वप्नवासवदत्तम् २. प्रतिज्ञायौगन्धरायण ३. अविमारक	बृहत् कथा
४. बालचरित	हरिवंश
५. चारुदत्त	काल्पनिक
६. प्रतिमानाटक ७. अभिषेक नाटक	रामायण
८. मध्यम-व्यायोम ९. दूतवाक्य १०. दूतघटोत्कच ११. कर्णभार १२. ऊरुभङ्ग १३. पञ्चरात्र	महाभारत

नाटकों का संक्षिप्त परिचय

१. स्वप्नवासवदत्तम्—छः अंक के इस नाटक में मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा 'वासवदत्ता अग्नि में जल कर मर गई' इस प्रवाद को फैलाकर, उदयन का विवाह पद्मावती से कराकर—इस नीति से उदयन के अपहृत राज्य के पुनः प्राप्त कराने का वर्णन है।

२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण—चार अंक के इस नाटक में उदयन का वासवदत्ता से प्रेम और विवाह वर्णित है। मंत्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को मगधराज प्रद्योत के यहाँ से छुड़ाने तथा उसकी नीतिमत्ता का वर्णन है।

३. अविमारक—छः अंक के इस नाटक में राजकुमार अविमारक का (राजा कुन्तिभोज की पुत्री) राजकुमारी कुरंगी के साथ प्रेम विवाह वर्णित है।

४. **बालचरित**—पाँच अंक के इस नाटक में श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंसवध तक की कथा वर्णित है।

५. **चारुदत्त**—चार अंक के इस नाटक में निर्धन किन्तु उदारमना ब्राह्मण चारुदत्त और वसन्तसेना नाम की वेश्या के प्रेम सम्बन्ध का वर्णन है।

६. **प्रतिमा नाटक**—सात अंक के इस नाटक में रामायण की कथा संक्षेप में वर्णित है।

७. **अभिषेक**—छः अंक के इस नाटक में रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की कथा संक्षेप में दी गई है। अन्त में रावणवध के पश्चात् राम के राज्याभिषेक का वर्णन है।

८. **मध्यमव्यायोग**—इस एकांकी नाटक (व्यायोग) में भीम के द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण पुत्र को बचाना एवं भीम को पुत्र के दर्शन से आनन्द और हिडिम्बा से पुनः मिलना वर्णित है।

९. **दूतवाक्य**—इस एकांकी नाटक म महाभारत के युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण का पाण्डवों की ओर से सन्धि-प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास जाना और विफल मनोरथ-होकर लौटने का वर्णन है।

१०. **दूतघटोत्कच**—इस एकांकी नाटक में अभिमन्यु के मृत्यु के बाद श्रीकृष्ण का घटोत्कच को दूतरूप में धृतराष्ट्र के पास भेजना और दुर्योधन द्वारा उसका अपमान करते हुए यह कहना वर्णित है कि—'मैं अपने बाणों द्वारा इसका उत्तर दूँगा।'

११. **कर्णभार**—इस एकांकी नाटक में कर्ण का ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र को कवच और कुण्डल दान में देने का वर्णन है।

१२. **ऊरुभङ्ग**—इस एकांकी नाटक में द्रौपदी के अपमान के प्रतीकार-स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जङ्घा को भंग करके उसको मारने का वर्णन है। इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि संस्कृत साहित्य में यही एक दुःखान्त नाटक है।

१३. पञ्चरात्र—तीन अंक के इस नाटक में यज्ञ की समाप्ति पर द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा रूप में पाण्डवों को आधा राज्य देने की माँग पेश की है। दुर्योधन ने कहा कि पाँच रात्रि के अन्दर यदि पाण्डव मिल जाएँगे तो ऐसा कर दूँगा। द्रोण के प्रयत्न से पाण्डवों का मिलना और आधा राज्य प्राप्त करना इसमें वर्णित है।

—लेखक

कर्णभार

(एक अध्ययन)

कर्णभार की कथावस्तु—

कर्णभार की नाटकीय कथावस्तु का प्रारम्भ नान्दी के बाद सूत्रधार के प्रवेश और उसके द्वारा मङ्गलाचरण से होता है। ज्योंहि वह कोई घोषणा करना चाहता है त्योंहि युद्ध के प्रारम्भ होने का वृत्तान्त सुनाने के लिए भट भी प्रवेश करता है। वह कर्ण से दुर्योधन की आज्ञा से यह निवेदन करना चाहता है कि पाण्डवों की सेना अर्जुन को आगे कर बढ़ रही है और उनके सैनिक सिंहनाद कर रहे हैं। उनके युद्ध के आह्वान को सुनकर नागकेतु (झंडे पर हाथी के चिह्न वाले) दुर्योधन भी युद्ध के लिए प्रस्थान कर चुके हैं। उसी समय भट को शल्य के साथ युद्धवेश में अपने भवन से निकलते हुए कर्ण दिखाई पड़ते हैं। अत्यन्त पराक्रमी कर्ण इस समय अभूतपूर्व मानसिक व्यथा से संतप्त से जान पड़ते हैं।

कर्ण शल्यराज से अपने रथ को अर्जुन की ओर चलने को कहते हैं। फिर उन्होंने यह सोंचा कि इस युद्ध के समय में हमारे मन में वैधुर्य क्यों कर आ रहा है। मैं तो क्रुद्ध यमराज की भाँति पराक्रमी हूँ; और बड़े दुःख की बात है कि पहले कुन्ती से उत्पन्न होकर फिर राधा के पुत्र के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार युधिष्ठिर आदि पाण्डव तो मेरे छोटे भाई हैं। इन्हें क्यों मारा जाय और फिर मुझे तो माता कुन्ती ने मना भी किया है। मेरी अस्त्र शिक्षा भी बेकार ही है। अस्त्रशिक्षा का स्मरण आते ही कर्ण शल्यराज से इसका वृत्तान्त सुनाने लगते हैं—

पहले मैं महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम के पास अस्त्र विद्या सीखने के लिए गया। क्षत्रिय जाति के विनाशक मुनिवर परशुराम के पास पहुँचकर जब मैं उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया तब मुझे खड़ा देखकर उन्होंने पूँछा—तुम कौन हो और तुम्हारे आगमन का क्या प्रयोजन है। जब मैंने सम्पूर्ण अस्त्रों

की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की तब उन्होंने कहा कि मैं केवल ब्राह्मण को ही उपदेश करता हूँ क्षत्रियों को नहीं। 'तब मैं तो क्षत्रिय नहीं हूँ'—ऐसा कहकर मैंने शिक्षा प्राप्त करना शुरु कर दिया। फिर कुछ समय बीत जाने पर एक दिन फल, मूल, समिधा, कुश और कुसुम लेने के लिए जाने वाले गुरु जी के साथ मैं भी वन को चल पड़ा। तब गुरु जी वन में भ्रमण करने के परिश्रम से थककर मेरी गोद में ही सो गए। दुर्भाग्यवश वज्रमुख नामक कृमि विशेष ने मुझे जाँघों में काट लिया। किन्तु गुरु जी के निद्रा भङ्ग के भय से उस वेदना को मैंने धैर्यपूर्वक सह लिया। रक्त से भींगे हुए गुरु जी ने क्षत्रियोचित सहनशीलता से मुझे क्षत्रिय समझ कर उन्होंने क्रोध से लाल होकर शाप दे दिया कि 'समय पड़ने पर तुम्हारे अस्त्र बेकार हो जायँ'। इस प्रकार अस्त्रों के इस वृत्तान्त को सुनकर शल्य को बड़ा कष्ट हुआ। चूँकि समय उपस्थित था इसलिए कर्ण इन अस्त्रों की परीक्षा करना चाहते हैं और परीक्षण किया तो वे सचमुच बेकार ही सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त कर्ण ने यह भी अनुभव किया कि उनके हाथी और घोड़े भी दीनभावापन्न हो रहे हैं। इस परिस्थिति को देखकर शल्य को भी बड़ा विषाद हुआ। किन्तु कर्ण यह कहते हुए समझाते हैं कि कोई बात नहीं है क्योंकि संग्राम में मारे जाने पर स्वर्ग मिलता है और युद्ध जीत लेने पर यश की प्राप्ति होती है। अतः किसी भी प्रकार हमें विफलता नहीं मिलेगी। फिर कर्ण अपने काबुली घोड़ों से रक्षा करने की माँग करते हुए इस प्रकार गर्वोक्ति करते हैं कि रण की सीमा में पहुँचकर, धर्मराज युधिष्ठिर को बाँधकर तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन को गिराकर पाण्डवों की उस दुर्गम सेना को भयानक सिंह के मारे जाने पर सुगम जङ्गल की भाँति बना दूँगा।

इसके बाद से कर्ण शल्य के साथ युद्धभूमि में जहाँ अर्जुन थे उधर की ही ओर बढ़ते हैं तभी नेपथ्य से कुछ शब्द सा सुनाई पड़ता है—हे कर्ण! मैं बहुत बड़ी भिक्षा माँगता हूँ। इस आवाज से कर्ण को यह धारणा हुई कि यह कोई सामान्य ब्राह्मण नहीं क्योंकि इसके शब्द को सुनकर तो मेरे घोड़े भी रुक गए। फिर भी वे ब्राह्मण को स्वयं ही बुला लाते हैं और यह कहते हुए कि आपके आगमन से मैं बड़ा ही आनन्दित हुआ हूँ कर्ण उन्हें प्रणाम करते हैं। अब इन्द्र जो कि ब्राह्मण वेश में कर्ण से कवच माँगने आये थे बड़े ही असमञ्जस

में फँस जाते हैं कि इन्हें कौन सा आशीर्वाद दिया जाय ? यदि दीर्घायु होने को कहता हूँ तो ये दीर्घ आयु वाले हो जायँगे और यदि कुछ नहीं कहता हूँ तो ये मूर्ख समझेंगे। फिर भी इन्द्र ने 'हिमालय और सागर के समान यशस्वी होओ' ऐसा आशीर्वाद कर दिया। यह सुनकर कर्ण को कुछ विप्रतिपत्ति हुई। अतः उन्होंने कहा—'भगवन् ! आपने दीर्घायुष् होने का आशीर्वचन नहीं किया अथवा यही उपयुक्त था। क्योंकि पुरुष के द्वारा धर्म यत्नपूर्वक साध्य है और राजलक्ष्मी तो सर्प की जिह्वा की भांति चञ्चल ही है। अतः मात्र प्रजा के पालन की ही बुद्धि से राजा को शासन करना चाहिए क्योंकि पार्थिव शरीर के नष्ट हो जाने पर मात्र यश ही शेष रह जाते हैं।

आगे प्रकृत का अनुसरण करते हुए कर्ण ब्राह्मण से पूँछते हैं कि आपका आने का क्या प्रयोजन हैं ? और कौन सी वस्तु आपको दूँ ? इस पर इन्द्र ने कहा कि मैं बहुत बड़ी भिक्षा माँग रहा हूँ। कर्ण ने कहा कि स्वर्ण जटित शृङ्गों वाली दुधार गाएँ दे दूँ। इन्द्र ने यह कहते हुए अस्वीकर कर दिया कि कर्ण कुछ समय तक ही दूध पीऊँगा अतः सीमित दान नहीं चाहिए। कर्ण ने यह कहते हुए कि मैं आपको फिर एक हजार काबुली घोड़े दे दूँ—दूसरा विकल्प प्रस्तुत किया। किन्तु इन्द्र ने इसे भी जब अस्वीकार कर दिया तो कर्ण हाथियों के झुण्ड, अतुल स्वर्ण, समस्त पृथ्वी, अग्निष्टोम-याग का फल और यहाँ तक कि वे अपना शिर भी देने को तैयार हो गए। फिर भी जब ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र को संतोष न हुआ तो अन्त में वे देव और दानवों से भी अभेद्य कवच को अपने कुण्डलों के साथ देने को तैयार हो गए।

दान का यह विकल्प सुनकर इन्द्र बड़े ही आनन्दित हुए और तुरन्त ही स्वीकारोक्ति दे दी। कर्ण समझ गए कि बड़ी भारी प्रवञ्चना है फ़िर भी देने को उद्यत हो गए और इस पर शल्य ने उन्हें जब रोका तो वे यह कहते हुए उन्हें चुप कराते हैं कि शल्यराज ! समय बीतने पर उपार्जित विद्या भी भूल जाती है और दृढ़मूल वाले वृक्ष भी गिर जाते हैं तथा सरोवर का जल भी गर्मी के आने पर सूख जाता है किन्तु हवन आदि किया हुआ पदार्थ अथवा दान में दी हुई वस्तु ही ज्यों की त्यों रह जाती है। अर्थात् पुण्य ही स्थायी है। अतः हे ब्राह्मण ! इसे ले लो-ऐसा कहते हुए कर्ण ने शरीर से काटकर

कवच और साथ में कुण्डल भी इन्द्र को दे दिया। इन्द्र भी यह सोचकर चले गए कि देवताओं से अर्जुन के विजय की हमारे द्वारा की गई प्रतिज्ञा आज पूरी हो गई।

इन्द्र के चले जाने पर शल्य ने इस दान से उनके प्रवञ्चित हो जाने की बात जब कही तब कर्ण ने यह कहा कि इन्द्र हमसे ही ठगे गए हैं, क्योंकि अनेक यज्ञों के फल से तृप्त और दानवों का विनाश करने वाले इन्द्र ही आज मेरे द्वारा उपकृत किए गए हैं।

इसके बाद एक देवदूत ब्राह्मणवेश में आकर यह कहता है कि कवच कुण्डल लेने पर चूंकि इन्द्र को महान् पश्चात्ताप हुआ है अतः उन्होंने पाण्डवों में से एक का वध करने के लिए अमोघ विमला नामक शक्ति दी है। अतः आप स्वीकार करें। किन्तु कर्ण ने यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि मैं दान के बदले दान नहीं लेता इस पर ब्राह्मणवेशधारी देवदूत ने कहा कि क्या ब्राह्मण वचन से भी नहीं ले सकते। कर्ण ने यह कहते हुए स्वीकार कर लिया कि ब्राह्मण वचन का तिरस्कार आज तक मैंने कभी नहीं किया। अच्छा बताओ यह कब प्राप्त होगी? देवदूत ने कहा—जभी आप स्मरण करेंगे तभी मिल जायगी। कर्ण उस देवदूत को लौटाते हुए युद्ध की ओर चलने को उद्यत हुए कि उन्हें कुछ शब्द सा सुनाई दिया। फिर उन्होंने सोचा कि यह प्रलयंकर शङ्खध्वनि कृष्ण की है अथवा अर्जुन की है। लगता है युधिष्ठिर की पराजय से कुपित मन वाले अर्जुन आज मुझ से यथाशक्ति युद्ध करेंगे। इसके बाद दोनों ही अर्जुन की ओर बढ़ते हैं और भरतवाक्य के साथ ही प्रस्तुत नाटक की समाप्ति हो जाती है।

कर्णभार की कथा का महाभारतीय परिवेश—

महाभारत के विभिन्न स्थलों पर बिखरी कथाओं को इस नाटक में संकलित किया गया हैं। यह इस प्रकार है—

कर्ण का राधेयत्व—कर्ण कुन्ती के पुत्र थे जो सूर्य से उत्पन्न हुए थे।[1] जन्म लेते ही इन्हें कुन्ती ने सन्दूक में बन्दकर अश्व नदी में छोड़ दिया।[2] यह

---

१. महा० आदि० १०४. ११। २. महा० वन० २९२. २२।

हते बहते चर्मण्वती नदी में आया। वहां से यमुना तथा गंगा नदी में बहते ए उसे धृतराष्ट्र के सारथि अधिरथ ने देखा। उसने अपनी पत्नी राधा को से दे दिया। बालक को देखते ही उसकी आँखों में आनन्दाश्रु आ गए योंकि उसे कोई सन्तान न थी। जन्म से ही कर्ण पर कवच और कुण्डल हने के कारण यह अब तक जीवित थे।[1] राधा ने इनका भरण पोषण [देवता ारा प्रदत्त पुत्र मानकर] किया, इसीलिए ये राधेय कहलाए।[2]

कर्ण की शस्त्रास्त्र-शिक्षा—द्रोण ने कर्ण को शस्त्रास्त्र विद्या सिखाई।[3] द्यपि कर्ण ने द्रोण से धनुर्विद्या प्राप्त कर ली थी तथापि उन्हें ब्रह्मास्त्र की ाप्ति उनसे नहीं हुई; और इसी एक कारण से अर्जुन कर्ण से श्रेष्ठ थे। अतः र्ण ने द्रोण से ब्रह्मास्त्र सीखना चाहा किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। तः कर्ण महेन्द्रपर्वतनिवासी भगवान् परशुराम के पास गए। परशुराम त्रियद्वेष्टा थे। अतः कर्ण ने असत्य कथन करते हुए बताया कि वह भृगुकुलो-पन्न ब्राह्मण है। इस पर परशुराम ने शिष्य बनकर रहने की अनुमति उन्हें दे दी। उन्होंने कर्ण को सप्रयोग एवं यथाविधि ब्रह्मास्त्र सिखाया। एक दिन उपवास से श्रान्त भगवान् परशुराम कर्ण की गोद में सिर रखकर सो गए। तभी एक अलर्क नामक कृमि ने कर्ण की जाँघ काट खाई। रक्तस्पर्श से परशुराम ागृत हुए तो यह विचार किया कि इतनी वेदना कोई ब्राह्मण शान्ति से नहीं ह सकता। अतः परशुराम के मन में कुछ शंका हुई। चाहे जो हो यह अवश्य त्रिय है।[4] कर्ण ने सत्य कथन करके उन्हें सन्तुष्ट किया। फिर भी परशुराम ने उन्हें शाप दे दिया कि बराबरी के योद्धा से युद्ध करते हुए तथा अन्तिम समय में तुम्हें इस अस्त्र का स्मरण ही न होगा।

कर्ण और महाभारतीय राजनीति—कर्ण के राजपुत्र एवं क्षत्रिय न होने के कारण उन्हें बहुत अपमान सहन करना पड़ा था। उस समय

---

१. अङ्गैः सहैव जनितम्—कर्णभार २१।

२. राधेय इति विश्रुतः···कर्णभार ७।

३. महा० शां० २. ५।

४. अतिदुःखमिदं मूढ न जातु ब्राह्मणः सहेत्।
क्षत्रियस्येव ते धैर्यं कामया सत्यमुच्यताम्॥ महा० शा० ३. २५।

दुर्योधन ने यह कहकर कि शौर्य कुल पर निर्भर नहीं करता; उन्हें अङ्गदेश का राज्य देकर गौरवान्वित किया। कर्ण ने दुर्योधन से आमरण मित्रत्व रखने का वचन भी दिया था। मात्र कर्ण ही अर्जुन पर श्रेष्ठत्व प्राप्त कर सकते थे इसका दुर्योधन ने अनुभव भी किया था। अतः जिस समय कौरवों और पाण्डवों में विरोध आरम्भ हुआ तभी इन्हें उत्तेजित करके उसने अपने पक्ष में कर लिया था।

दुर्योधन के लिए कर्ण बहुत ही महत्त्वपूर्ण सम्बल थे जिसका पता पाण्डव पक्ष को भी था। अतः पाण्डवों के विरुद्ध युद्ध से कर्ण को परावृत करने के लिए तीन प्रयत्न किए गए—

१. भगवान् कृष्ण स्वयं उनके पास गए थे।
२. कुन्ती भी स्वयं कर्ण से मिलने गई थी तथा पुत्र कहकर अपना परिचय भी उन्हें दिया था। किन्तु कर्ण ने अपने पूर्वकथित वचन को दुहराते हुए यह वचन दिया कि मैं केवल अर्जुन से युद्ध करके उसका वध करूँगा, अन्य पाण्डवों को मैं हानि नहीं पहुँचाऊँगा।
३. महाभारत के संग्राम में द्रोण-वध के बाद कर्ण सेनापति हुए। इस महासमर की आज्ञा माँगने के लिए कर्ण भीष्म पितामह के पास गए। उस समय भी भीष्म पितामह ने उनका जन्म वृत्तान्त सुनाकर उन्हें युद्ध से परावृत करने का यत्न किया था।

कर्ण का कवच एवं कुण्डल का दान—अंगराज कर्ण अत्यन्त प्रसिद्ध धनुर्धर थे। यह मानी हुई बात थी कि भविष्य में कौरव पाण्डव युद्ध में कर्ण अर्जुन के विरुद्ध लड़ेंगे। कुन्ती के पुत्र अर्जुन की उत्पत्ति इन्द्र से हुई थी पुत्र का कल्याण करना उनका कर्तव्य था। अतः कर्ण को हतबल करने के लिए इन्द्र ने कवच और कुण्डल माँगने का विचार किया। सूर्य द्वारा प्रदत्त कवच और कुण्डलों के ही कारण कर्ण अजेय और अमर थे; तथा कर्ण के द्वारा अर्जुन-वध सम्भव भी था। जैसे अर्जुन की चिन्ता इन्द्र को थी वैसे ही कर्ण की चिन्ता सूर्य को भी थी। अतः सूर्य ने कर्ण को स्वप्न में दर्शन देकर ब्राह्मण वेश में आकर इन्द्र द्वारा कवच और कुण्डल माँगने की भावी बात को बतलाकर कहा कि कवच-कुण्डल देकर तुम अपनी आयु का क्षय मत करो

तब कर्ण ने सूर्य को पहचान लिया। कर्ण ने यह कहकर उनकी मन्त्रणा अमान्य कर दी कि आयु की अपेक्षा कीर्ति श्रेयस्कर है तथा कीर्ति से ही उत्तम गति प्राप्त हो सकती है। सूर्य को बहुत दुःख हुआ और यह कहा कि फिर भी तुम नहीं मानते हो तो कम से कम इन्द्र से एक शक्ति माँग लो। कर्ण को यह मान्य था।[1]

एक दिन कर्ण जब जप कर रहे थे, तभी ब्राह्मणवेश में इन्द्र आए और कवच एवं कुण्डल की माँग की। कर्ण उदार थे। कोई भी ब्राह्मण कुछ माँगे तो उसे वे अवश्य देते थे। इसलिए उन्होंने तत्काल 'हाँ' कहा। यह कवच त्वचा से संलग्न होने के कारण, उसे निकालने में त्वचा का छिल जाना अवश्यंभावी था। फिर भी कर्ण विचलित नहीं हुए, और उसे निकालकर इन्द्र को दे दिया। बहुत प्रसन्न होकर इन्द्र ने एक अमोघ शक्ति उन्हें दी और कहा कि जिस पर इस शक्ति का प्रहार करोगे उसकी तत्काल मृत्यु हो जाएगी।

कर्ण के सारथि शल्य—द्रोणवध के बाद जब कर्ण को सेनापति का भार सम्हालना था तो कर्ण के समान अद्वितीय योद्धा को उतने ही अद्वितीय सारथि की आवश्यकता थी। इस समय केवल दो उत्तम सारथि थे एक भगवान् श्रीकृष्ण और दूसरे मद्रदेशाधिपति महाराज शल्य। श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथि थे। अतः दुर्योधन के अनुनय विनय से शल्य कुछ शर्त के साथ कर्ण के सारथि हुए। शर्त यह थी कि युद्ध के बीच में जब सारथित्व का कार्य वे करेंगे तब वे जो भी कहते रहेंगे उसे कर्ण को सुनते रहना होगा।[2]

कथा परिशीलन—

कर्णभार में महाकवि भास ने कवच एवं कुण्डल हरण की महाभारत की ही कथा को कर्ण के जीवन के अन्तिम समय के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें कर्ण के मनोवैज्ञानिक भावों का पूर्ण दिग्दर्शन है। नाटक के प्रारम्भ से ही वह चिन्ताकुलित और हताश से चित्रित किए गए हैं।[3] यद्यपि यह बहुत

---

१. महा० वन० २८४–२९४।

२. महा० कर्णपर्व २२-२५।

३. हृदयपरितापः—कर्णभार पृ० ६।

छोटा नाटक है फिर भी कर्ण के जीवन का और उनके उद्देश्यों का यहाँ एक पूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया गया है। महाभारत की कथाओं को भास ने अपनी कल्पना-शक्ति से एक नया मोड़ दे दिया है। इस नाटक में उनकी कल्पना कहीं पर महाभारत की कथा से अपने को अलग कर देती है इसका विवेचन इस प्रकार है—

१. महाभारत में इन्द्र द्वारा कवच की याचना युद्ध में नहीं अपितु जब पाण्डव वनपर्व में वनवास ही कर रहे थे, तभी कर ली गई थी।
२. महाभारत में कर्ण को इसकी सूचना सूर्य से ही स्वप्न में मिल जाती है और वे इसके बदले में इन्द्र से शक्ति पाने के लिए तैयार भी हैं। किन्तु भास कर्ण के महान् चरित्र में इस प्रकार का दाग नहीं देना चाहते कि वह दान के बदले में दान लेना स्वीकार करें।
३. कर्णभार में ब्राह्मण के वचन से शक्ति स्वीकार कर लेते हैं। यहाँ उन्हें शक्ति पाने की कोई इच्छा नहीं है अपितु ब्राह्मणनिष्ठा ही सर्वोपरि द्योतित की गई है।
४. महाभारत में कीड़े का नाम अलर्क है जबकि यहाँ उसका वज्रमुख नाम दिया गया है।
५. कर्ण के सारथि शल्य का स्वरूप महाभारत से बिलकुल भिन्न है।

नाटक का नाम 'कर्णभार' क्यों ?—

प्रस्तुत नाटक की संघटना युद्धभूमि में की गई है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि द्रोणाचार्य के निधन पर कौरवों की तरफ से कर्ण सेनापति नियुक्त किए गए थे। अतः युद्ध का सारा भार (उत्तरदायित्व) कर्ण पर आ पड़ा। उसीलिए इस नाटक को कर्णभार नाम दिया गया है। त्रिवेन्द्रम् की एक पाण्डुलिपि में इस नाटक के नाम का विकल्प 'कर्ण-कवच-हरणम्' भी प्राप्त होता है[२]। यह नाम भी इस नाटक के अभिप्रेत का दिग्दर्शन करता है। चूँकि इस नाटक की प्रधान घटना 'इन्द्र के द्वारा कर्ण के कवच का

---

१. धिग् दत्तस्य न प्रतिगृह्णामि। कर्णभार पृ० ४१।
२. New Catolague Cotlogorum, Ed. by. V. Raghavan.

छद्मवेश में हरण' है अतः यह नाम उचित प्रतीत होता है। फिर भी विद्वानों ने कर्णभार की अनेक व्याख्या प्रस्तुत की है—

१. पुसालकर महोदय के अनुसार कानों के भारस्वरूप कुण्डलों का दान कर यहाँ कर्ण की अद्भुत दानशीलता का प्रदर्शन है। उनकी युक्ति यह है कि जब कर्ण ने अपने कुण्डलों को वाचिकरूप से दान में देने को कह दिया तो वे उसके बाद उनके लिए भारस्वरूप हो गए और इस प्रकार वाचिक दान और क्रियात्मक दान के मध्य में उनके भारस्वरूप होने से इस नाटक का नाम कर्णभार हुआ। इस व्याख्या में प्रधान देय वस्तु कवच का समावेश न होने से प्रो० देवधर ने इसे अधूरी व्याख्या करार की है।

२. विन्टरनित्स ने कर्णभार की व्याख्या कर्ण के कठिन कार्य से की है।

३. मैक्सलिण्डेन्यू भार का अर्थ कवच से लेते हैं।

४. डा० भट्ट के अनुसार कर्ण की चिन्ता ही भारभूत हो गई।

५. कुछ विद्वानों की राय में कर्ण द्वारा प्राप्त युद्ध कौशल उसके लिए भारभूत हो गए।

इस प्रकार कर्ण के लिए कुछ न कुछ भारस्वरूप हो गया—यहाँ तक तो सभी विद्वान् एकमत प्रतीत होते हैं। अब यह भार कौन सा है जो कर्ण पर आ पड़ा ? यही समस्या है। जब कर्ण ने द्रोणवध के बाद सेनापतित्व का भार सम्हाला तभी युद्धभूमि में ही उनकी मुख्य रक्षा की वस्तु 'कवच' भी इन्द्र द्वारा दान में ले लिया गया। इस नाटक के अन्तिम श्लोक में कर्ण को युद्धस्थल से शङ्खध्वनि सुनाई पड़ती है। यह ध्वनि प्रलयकालीन सागर की ध्वनि के समान थी। कर्ण सोचते हैं कि यह कृष्ण की है; अथवा हो न हो यह अर्जुन की ही होगी। क्योंकि इन्द्र से अर्जुन को कवच हरण की बात का पता लग जाने से सम्भवतः उनका उत्साह और भी बढ़ा हुआ सा प्रतीत होता है। अतः आज अर्जुन मुझ कवच रहित कर्ण से यथाशक्ति लड़ेंगे। इस प्रकार जबकि इनके पास ब्रह्मास्त्र भी नहीं है और प्रधान रक्षा की वस्तु कवच भी चला गया तब इस समय जब इन्हें युद्ध का संचालन करना है तब कुछ

---

१. पार्थः करिष्यति यथाबलमद्य युद्धम् ॥ कर्णभार २४।

भी पास में न रहने से ऐसा प्रतीत होता है कि उन हतबल कर्ण के लिए यह सेनापतित्व ही भारस्वरूप हो गया।

रूपक के भेदों में कर्णभार का स्थान—

कर्णभार मात्र एक अङ्क का नाटक है। रूपक के भेदों में से किसके अन्तर्गत इसका समावेश हो ?—यह भी विचारणीय है। कर्णभार रूपक के भेद 'उत्सृष्टिकाङ्क' के अन्तर्गत आ सकता है[1]। विभिन्न आचार्यों द्वारा की गई परिभाषाओं के आधार पर इस प्रकार के एकाङ्की नाटक में—

१. प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश कवि की कल्पना के आधार पर होना चाहिए।[2]
२. साधारण पात्रों को ही स्वीकृति प्रदान की जानी चाहिए।
३. अनेक स्त्रियों की परिदेवना (रोना, चिल्लाना) से युक्त इसे करुण-रस-प्रधान होना चाहिए[3] और,
४. वाक्युद्ध से मुक्त होना चाहिए।

---

१. हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में 'उत्सृष्टिकाङ्क' की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

उत्क्रमणोन्मुखा दृष्टिः जीवितं प्राणाः यासां ताः उत्सृष्टिकाः शोचयन्तः स्त्रियः, ताभिः अङ्कित इति तथोक्तः।

२. दशरूपक ३. ७०-७२,

उत्सृष्टिकाङ्के प्रख्यात वृत्तं बुद्ध्या प्रपञ्चयेत्।
रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृताः नराः॥
भाववत् सन्धिवृत्यङ्गैर्युक्तः स्त्रीपरिदेवितैः।
वाचा युद्धं विधातव्य तथा जयपराजयौ॥

३. साहित्यदर्पण ६. २५०-२५२,

उत्सृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृता नराः।
रसोऽत्र करुणः स्थायी बहुस्त्रीपरिदेवितम्॥
प्रख्यातमितिवृत्तं च कविर्बुद्ध्या प्रपञ्चयेत्।
भाणवत् सन्धिवृत्यङ्गान्यस्मिञ्जयपराजयौ॥
युद्धं च वाचा कर्तव्यं निर्वेदवचनं बहु।

संक्षेप में निर्वेद के भावों का मुख्य रूप से इसमें प्राधान्य होता है। यह परिभाषा साधारण तौर से कर्णभार पर लागू होती है। वस्तुतः महाभारत पर आधारित भास के नाटकों को हम नाटक की परिभाषाओं के ठीक दायरे में नहीं रख सकते। फिर भी ऐतिहासिक घटना का समावेश भास ने अपनी कल्पना के साथ इसमें प्रस्तुत किया है। अतः इसे 'उत्सृष्टिकाङ्क' नाटक ही कहना चाहिए।

चरित्र-चित्रण—

कर्ण—व्यास के कर्ण से भास के कर्ण का चरित्र बहुत ही प्रशंसनीय है। उनके चरित्र की उत्कृष्टता का दर्शन उनकी दानशीलता और अपूर्व ब्राह्मणनिष्ठा से परिलक्षित है[1]। वह ब्राह्मणों के लिए सर्वस्व दान करने के लिए उद्यत दिखाई पड़ते हैं। यहाँ तक कि जब इन्द्र गाय घोड़े हाथी और सुवर्ण आदि लेना अस्वीकार कर देते हैं तो वे अपना शिर भी देने को तैयार हो जाते हैं[2]। अन्त में यह कहते हुए कि यद्यपि यह कवच हमारी देहरक्षा के लिए मेरे अङ्गों के साथ ही उत्पन्न हुआ है तथापि यदि तुम्हें यही चाहिए तो मैं उसे दूँगा ही और साथ में अपना कुण्डल भी दे सकता हूँ[3]। क्योंकि उनका यह विश्वास है कि संसार में यश ही स्थिर वस्तु है।[4] यह कहकर स्वीकारोक्ति मिलते ही बिना कुछ हीलाहवाली किए वे तुरन्त काटकर उन्हें ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र को दे देते हैं। इस दान कार्य के लिए यद्यपि शल्य उन्हें रोकते भी हैं। फिर भी उनका दृढ़ विश्वास यही है कि संसार में सब कुछ नष्ट हो जाने वाले हैं और मात्र यश एव दान ही स्थिर रहने वाले हैं[5]।

---

१. (i) विप्रेन्द्रपादरजसा तु पवित्रमौलिः
कर्णो भवन्तमहमेव नमस्करोमि ॥—कर्णभार १६,
(ii) ब्राह्मणवचनमिति। न मयातिक्रान्तपूर्वम्।—कर्णभार पृ० ४२

२. तेन हि मच्छिरो ददामि।—कर्णभार पृ० ३५

३ अङ्गैः सहैव जनितं मम देहरक्षा···
देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाभ्यां···कर्णभार २१.

४. हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥—कर्णभार १७

५. हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥—कर्णभार २२

महाभारत के दानवीर कर्ण ने स्वयं इन्द्र से शक्ति मांगकर जो अपने को कलङ्कित किया है उस कलङ्क को भास ने बहुत हद तक धो दिया है। भास के कर्ण दान से किसी प्रतिफल की आशा नहीं रखते हैं। जब देवदूत इन्द्र द्वारा प्रदत्त विमला नामक शक्ति उन्हें देना चाहता है तो उसे वह तुरन्त ही अस्वीकार कर देते हैं। वह यह कदापि नहीं चाहते कि दिए हुए दान के लिए कुछ लिया जाय।[1] किन्तु उनकी ब्राह्मणनिष्ठा इतनी प्रबल थी कि जब ब्राह्मणवेशधारी देवदूत ने ब्राह्मण वचन से लेने को कहा तो कर्ण उसे अस्वीकार कर देने का साहस कदापि नहीं कर पाते। इस प्रकार भास ने कर्ण का चरित्र अत्यन्त उदारता से परिपूर्ण एवं महान् दानी के रूप में चित्रित किया है।

कर्ण दानवीर थे। ब्राह्मणों को कुछ भी हो दे देते थे। महाभारत में कवच और कुण्डल का दान कर देना कर्ण का सबसे बड़ा दान था। किन्तु महर्षि व्यास ने इस दान का समय ठीक नहीं चुना। जबकि भास ने कर्ण के लिए और भी कठिन परीक्षा की घड़ी उपस्थित कर दी। परशुराम द्वारा सीखी हुई अस्त्रविद्या जब युद्धभूमि में ही परीक्षा कर लेने पर बेकार ठहरी; और मात्र कवच ही कर्ण के लिए तत्काल जीवन रक्षा का सबसे उत्कृष्टतर उपाय था। उसे भी उन्होंने ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र को दान में दे दिया। उनका यह दान इसलिए सराहनीय है कि उन्होंने दान के लिए अपने जीवन की भी परवाह न की। यही नहीं, बल्कि अपनी आवश्यकता के एन-वक्त पर ही इसका दान कर दिया। इस प्रकार भास के कर्ण अपनी दान-वीरता के लिए मर मिटे हैं। अतः उनका चरित्र अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़ा है। जब कि व्यास के कर्ण दान के बदले में शक्ति लेने को भी तैयार थे। इस प्रकार जीवन की परवाह करते हुए उन्होंने दान दिया—यह निम्न चरित्र था जिसे भास ने बहुत ऊँचा उठा दिया। यही नहीं महाभारत में इन्द्र ने स्वयं कवच कुण्डल की याचना की। किन्तु यहाँ कर्ण स्वयं ही उसे देय विकल्पों में प्रस्तुत कर देते हैं। आवश्यकता के एनवक्त पर इन्द्र को कवच एवं कुण्डलों को अर्पित कर देने पर भी उन्हें अल्प-मात्र भी क्षोभ नहीं होता प्रत्युत इन्द्र जैसे परमैश्वर्यशाली व्यक्ति को दान देने में

---

१. धिग् दत्तस्य न प्रतिह्लामि।—कर्णभार पृ० ४१

ही वे अपने को गौरवान्वित समझते हैं।[1] इस प्रकार भास के कर्ण वास्तव में दानवीर थे।

इन्द्र—प्रस्तुत नाटक में इन्द्र का चरित्र पूर्ण कपटी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे अपने स्वार्थ के प्रति एकाग्र से दीख पड़ते हैं। कर्ण के द्वारा दान के बहुत से विकल्पों का नाम सुनकर भी स्वार्थ-तत्परता में उनका वे तिरस्कार करते चले जाते हैं; और ज्यों हि कवच एवं कुण्डल का देय वस्तु में नाम सुनते हैं कि तुरन्त ही उसे स्वीकार कर लेते हैं।

इन्द्र ने कर्ण को जो ब्राह्मणवेश में छला था इसके लिए उन्हें ग्लानि भी थी। इसीलिए अपने दुष्कृत्य के परिमार्जन स्वरूप देवदूत से उन्होंने अमोघ विमला नामक शक्ति कर्ण के लिए देवदूत से भेजी। यही नहीं देवदूत नाम लेकर यह कह भी देता है कि पुरन्दर को कवच और कुण्डल लेने से महान् खेद हुआ है जिसके लिए वह अनुग्रहीत हैं।[2] इस प्रकार इन्द्र का चरित्र एक तरफ स्वार्थी के रूप में चित्रित है और दूसरी ओर वह कर्ण के प्रति दयार्द्र भी हैं।

शल्य—शल्य मद्रदेश के राजा थे। यद्यपि ये युधिष्ठिर के मातुल (मामा) थे।[3] लेकिन दुर्योधन ने कपट से इन्हें अपनी ओर से लड़ने के लिए वशीकृत कर लिया था।[4] उन्होंने कर्ण का सारथित्व कर्म इस शर्त पर स्वीकार किया था कि वे रथ पर जो कुछ कहते रहेंगे उसे कर्ण को सुनना पड़ेगा और महाभारत में वर्णित शल्य कर्ण को युद्ध के दौरान अपनी कटुक्तियों से बेंधते रहे। यहाँ तक कि कर्ण के तेजोभङ्ग की प्रतिज्ञा भी उन्होंने की थी।[5] किन्तु भास

---

१. अनेक यज्ञाहुतितर्पितो द्विजैः
किरीटवान् दानवसंघमर्दनः।
सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलि-
र्मया कृतार्थः खलु पाकशासनः॥—कर्णभार पृ० २३

२. भोः कर्ण ! कवचकुण्डलगृहणाज्जनितपश्चात्तापेन पुरन्दरेणानुगृहीतोऽसि।—कर्णभार पृ० ४१

३. महाभा० भी० ५८–१४।

४. महाभा० आदि० २.२१६।

५. महाभा० ५.८.६७–४५।

ने यहाँ पर उनका चरित्र ही उलट दिया है। एक भी कटु-उक्ति उनके मुख से सुनने को हमें नहीं मिलती। भास ने यहाँ तक भी चित्रित किया है कि शल्य कर्ण के लिए दुःखी भी होते हैं।[1] इस प्रकार भास के शल्य की यह महती विशेषता है कि वे कर्ण की भलाई ही के लिए कवच के दान के लिए कर्ण को रोकते भी हैं।[2]

प्रस्तुत नाटक की विशेषताएँ—

भास के तेरह नाटकों में कर्णभार सबसे छोटा नाटक है। इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें बहुत कम पात्र हैं और एक भी स्त्री-पात्र नहीं हैं। भास के अन्य नाटकों में जहाँ 'स्थापना' शब्द का प्रयोग है वहीं एक-मात्र इस नाटक में 'प्रस्तावना' का प्रयोग किया गया है। अंग्रेजी के दुःखान्त नाटकों के ही समान इस नाटक की शैली को प्रो० रामचन्द्र राव दुःखान्त (Tragedy) मानते हैं। यह ठीक नहीं है क्योंकि इस नाटक का मूल अभिप्रेत कर्ण के 'दान-कर्म' की उत्कृष्टता का ही द्योतन है।

भासकृत पाँच एकाङ्की नाटकों में श्लोकों की दृष्टि से भी यह सबसे छोटा नाटक है। दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, मध्यमव्यायोग और ऊरुभङ्ग में क्रमशः ५६, ५२, ५२, और ६६ श्लोक हैं किन्तु इसमें २५ ही श्लोक हैं।

इस नाटक में बहुत से विषयों की सूचना कथोपकथन के ही दौरान दे दी गई है। जैसे परशुराम से कर्ण को प्राप्त अस्त्रविद्या और शाप का वृत्तान्त, कुन्ती [जो अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पाण्डवों को न मारने] के वरदान का वृत्तान्त[3] आदि।

काव्यगत विशेषताएँ—इस छोटे से नाटक में अलङ्कारों का भी पूर्ण परिपाक दृष्टिगत है। कर्ण सूर्य के पुत्र थे। अतः उनके बेटे कर्ण का स्वरूप एक स्थल पर उन्हीं सूर्य से उपमित किया गया है—

प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः
सूर्यः स्वभावरुचिमानिव भाति कर्ण ॥ २४ ॥

---

१. अहो कष्टम् अभिहितं तत्र भवता।—कर्णभार पृ० १८

२. अङ्गराज ! न दातव्यं न दातव्यम्।—कर्णभार पृ० ३८

३. ···पुनश्च मातुर्वचनेन वारितः ॥—कर्णभार ८

स्वभावतः प्रखर किरणों वाला सूर्य जैसे ग्रीष्मऋतु में मेघमालाओं से अच्छादित हो जाता है उसी प्रकार इस समय कर्ण शोभा पा रहे हैं।

प्रस्तुत नाटक में छोटे छोटे वाक्यों को लोकोक्तियों एवं सूक्तियों में अलङ्कृत किया गया है।

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥ १२ ॥

संग्राम में मारे जाने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है और युद्ध में जीतने पर यश प्राप्त होता है। यतः संसार में दोनों ही अधिक माननीय हैं। अतः युद्ध करने में निष्फलता हाथ नहीं ही लगेगी।

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ २२ ॥

समय बीतने पर उपार्जित विद्या भी नष्ट हो जाती है और मजबूत जड़ वाले वृक्ष भी समय आने पर गिर पड़ते हैं। गर्मी आने पर जल भी सरोवर में जाकर सूख जाता है। किन्तु हवनादि किया हुआ पदार्थ अथवा दान में दिया हुआ ही ज्यों का त्यों बना रहता है।

इस प्रकार सूक्तियाँ नाटक में मार्मिकता को उत्पन्न करती हुई सार्वभौम रूप से रक्खी गई हैं। छोटे छोटे वाक्यों के बीच बड़े बड़े समस्त पद भी प्रभावोत्पादक हैं—

(१) अन्योन्यशस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्रयोधाश्ववारणरथेषु।—कर्णभार ६।
(२) गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि।—कर्णभार ९।
(३) नरमृगपतिवर्ष्मालोकनभ्रान्तनारीनरदनुजसुपर्वव्रातपाताललोकः ॥
—कर्णभार १।
(४) राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः।—कर्णभार १६।
(५) विद्युल्लतातुङ्गजटाकलापम्।—कर्णभार ९।

सूक्ति के माध्यम से राजनीति का भी दिग्दर्शन करा दिया गया है—

धर्मो हि यत्नै पुरुषेण साध्यो
भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः ।
तस्मात् प्रजापालनमात्रबुद्धया
हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥ १७ ॥

इस प्रकार राजा को चाहिए कि वह मात्र प्रजापालन की ही बुद्धि से शासन करे। क्योंकि राजलक्ष्मी तो सर्प के जिह्वा के समान चञ्चल है और फिर पार्थिव शरीर के नष्ट हो जाने पर मात्र गुण ही शेष रह जाते हैं अतः पुरुष को चाहिए कि मात्र धर्म का ही यत्नपूर्वक साधन करे।

इस नाटक में प्रधान रस करुण रस है! बीच बीच में वीर रस भी समयानुसार प्रदर्शित किया गया है। भास ने इस छोटे से नाटक में विभिन्न सात प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। वसन्ततलिका और मालिनी इनका प्रिय छन्द मालूम पड़ता है। संक्षेप में इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह कर्ण के जीवन का सार प्रस्तुत कर देता है।[1]

———

१. द्र० इसी पुस्तक का प्राक्कथन।

नाटकीय पात्र परिचय

पुरुष पात्र

कर्ण — कौरवों के सेनापति [अङ्गदेश के राजा]।

शल्य — कर्ण के सारथि [मद्रदेश के राजा]।

भट — सिपाही।

इन्द्र — ब्राह्मणरूपधारी इन्द्र।

देवदूत — इन्द्र के ब्राह्मणरूपधारी दूत।

॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीभासप्रणीतं

कर्णभारम्

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

(At the end of the benediction then enters the stage director)

श्रीमद्रामकुवेरनामकमहं नत्वा गुरुं देहदं,
श्रीसिद्धेश्वरनामकं च शिरसा विद्याप्रदं सिद्धिदं ।
भासस्योत्तमनाटकाख्यकलया विभ्राजमानस्य सद्,
व्याकुर्वे भणितिद्वयेन विशदं श्रीकर्णभारं शुभम् ॥

प्रणम्य श्रीगुरुं मिश्रोपाख्यां पद्मां महाशयाम् । यतः प्राप्ता मया पूर्णा शारदां विमलान्विह ॥
श्रीमहाकविभासस्य कर्णभारस्य साम्प्रतम् । आलोच्य तस्य काव्यत्वं विचार्य च पुनः पुनः ॥
हिन्दीटीकामिमां रम्यां 'सरला' न्वर्थनामिकाम् । करोति स्पष्टबोधार्थं मालवीयः सुधाकरः ॥

(नान्दीपाठ[1] के अन्त में सूत्रधार[2] का प्रवेश)

---

१. आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥ सा० द० ६. २४

देवता, ब्राह्मण तथा राजादिकों की अशीर्वादयुक्त स्तुति 'नान्दी' के द्वारा की जाती है । इससे लोग आनन्दित होते हैं । अतः यह नान्दी कहलाता है ।

२. आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इहोदितः ॥

नायक, कवि और नाटक की प्रतिपाद्य वस्तु के गुणों को (नान्दी द्वारा) संक्षेप से सूचित करने वाला 'सूत्रधार' कहलाता है । यह रङ्गमंच को अलंकृत करने में कुशल होता है ।

सूत्रधारः—

नरमृगपतिवर्ष्मालोकनभ्रान्तनारी-
नरदनुजसुपर्वव्रातपाताललोकः ।
करजकुलिशपालीभिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः
सुररिपुबलहन्ता श्रीधरोऽस्तु श्रिये वः ॥ १ ॥

१. सुपर्ण°—इति वा पाठः ।

The Stage directer—

May Lord Śrdhara [= Viṣṇu] the destroyer of the army of the demons, bring welfare to you, at the sight of whose man-lion form multitudes of men, women, demons, gods and the denizens of the underworld were filled with wonder [i. e. the lion is never seen in the form of a man], who with the tip of his boltlike nails ripped open the breast of the demon-king Hiraṇyakaśipu. [1]

अन्वय—नरमृगपति-वर्ष्मालोकन-भ्रान्त-नारी-नर-दनुज-सुपर्व-व्रात-पाताललोकः, करज-कुलिश-पालीभिन्नदैत्येन्द्रवक्षाः, सुर-रिपु-बल-हन्ता, श्रीधरः, वः, श्रिये, अस्तु ॥ १ ॥

पदार्थ—नरमृगपति-वर्ष्मालोकनेन = नरसिंह [अवतार के] शरीर को देखने से; भ्रान्तौ=आश्चर्यचकित कर दिया है; नारी-नर-दनुजसुपर्वणाम्=स्त्री, पुरुष, दानव एवं देवताओं के; व्रातः=समूह; पाताललोकश्च=और पाताललोक को [येन=] जिसने ऐसे; करजकुलिशानां=[हाथ के] नखरूपी वज्र के; पाल्या=अग्रभाग से; भिन्नदैत्येन्द्र-वक्षाः = दैत्यराज हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को विदीर्ण करने वाले; सुर-रिपु-

सूत्रधार—

जिन [भगवान् विष्णु] के नरसिंह [अवतार के] शरीर को देखकर नर, नारी, राक्षस, देवगण और पाताललोक भी आश्चर्य में पड़ गया और जिन्होंने अपने वज्र के समान कठोर नख के अग्रभाग से दैत्यराज [हिरण्यकशिपु] का वक्षस्थल विदीर्ण किया—ऐसे दानवों की सेना का विनाश करने वाले भगवान् श्रीधर (= विष्णु) आप लोगों के कल्याण के लिए होवें ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। (परिक्रम्य[1], कर्णं दत्त्वा।) अये किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग ! पश्यामि।

(नेपथ्ये)

भो ! भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजायाङ्गेश्वराय।

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम्।

१. परिक्रम्य विलोक्य—इति वा पाठः।

Thus do I inform the respected gentlemen. (*Turning and listening*) Oh ! What is this noise to be heard while I am engaged in informing (the audience) ? Well !, I must see (what it is).

(*Behind the curtain*)

Oh ! Oh ! inform, inform the King of Aṅga.

The Stage director—Well ! now I know,

बल-हन्ता = देवताओं के शत्रु दानवों की सेना के विनाशक; श्रीधरः = लक्ष्मी को धारण करने वाले अर्थात् भगवान् विष्णु; वः = आप लोगों के; श्रिये = कल्याण के लिए; अस्तु = होवें ॥ १ ॥

कोप—वर्ष्म—शरीरं वर्ष्म विग्रहः–अमरकोष २.६.७०। सुपर्व—सुपर्वाणः सुमनसो गीर्वाणा दानवारयः—अमरकोषः १.१.७। पाली—कोणस्तु स्त्रियः पाल्याश्रिकोटयः–अमरकोष २.८.९३।

इस प्रकार मैं आप महानुभावों को सूचित करता हूँ। (घूमकर और कान लगाकर सुनते हुए) अरे, सूचना देने में व्यस्त मुझको यह कैसा शब्द-सा सुनाई दे रहा है। अच्छा ! देखूँ तो।

(नेपथ्य* में)

महाराज अङ्गाधिराज कर्ण से निवेदन करो, निवेदन करो।

सूत्रधार—अच्छा ! समझ लिया।

* कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते।

नर्तक समुदाय के रहने के स्थान को (जहाँ रहकर वे वेष बदलते हैं) नेपथ्य कहते हैं।

सङ्ग्रामे तुमुले जाते कर्णाय कलिताञ्जलिः।
निवेदयति सम्भ्रान्तो भृत्यो दुर्योधनाज्ञया ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

❀ प्रस्तावना ❀

By the order of Duryodhana a servant, agitated and with folded hands, is informing Karṇa about the terrible war. [2]

[EXIT]

[Here ends the prologue]

[नाटक का प्रारम्भ करते हुए सूत्रधार सामाजिकों के सामने पूर्वरङ्ग की स्थापना करते हुए कहता है :—]

अन्वय—तुमुले, संग्रामे, जाते, संभ्रान्तः, कलिताञ्जलिः, भृत्यः, दुर्योधनाज्ञया, कर्णाय, निवेदयति ॥ २ ॥

पदार्थ—तुमुले = भीषण; संग्रामे = युद्ध; जाते=छिड़ जाने पर; संभ्रान्तः= घबड़ाया हुआ; कलिताञ्जलिः = हाथ जोड़े हुए; भृत्यः = परिचारक; दुर्योधनाज्ञया = दुर्योधन की आज्ञा से; कर्णाय = कर्ण से; निवेदयति = [युद्ध के वृत्तान्त का] निवेदन कर रहा है ॥ २ ॥

भयङ्कर युद्ध छिड़ जाने पर व्याकुल और हाथ जोड़े हुए परिचारक दुर्योधन की आज्ञा से कर्ण को सूचना दे रहा है ॥ २ ॥

(सभी चले जाते हैं)

॥ प्रस्तावना[1] समाप्त ॥

१. सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत् तदामुखम् ॥
प्रस्तावना वा''' । दशरूपक १. ७८

जहाँ सूत्रधार नटी, मारिष अथवा विदूषक से अपने कार्य के विषय में विचित्र उक्ति से इस प्रकार बातचीत करे; जिससे प्रस्तुत कथा की सूचना मिल जाय उसे आमुख कहते हैं। इसी का नाम प्रस्तावना भी है।

(ततः प्रविशति भटः)

भटः—भो भो ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजायाङ्गेश्वराय—'युद्ध-काल उपस्थित' इति ।

करितुरगरथस्थैः पार्थकेतोः पुरस्तान्
मुदितनृपतिसिंहैः सिंहनादः कृतोऽद्य ।

(*Then enters a soldier*)

Soldier—Hello ! Sir, please report, please report to the King of Aṅga that the time of war has now approached.

The delighted lion-like kings mounted on the elephants, horses and chariots have sent forth today their roars of war before the flag of Pārtha (= Arjuna, the son of Pṛthā). The elephant bannered (Duryodhana) aware of the situation

अन्वय—अद्य, पार्थकेतोः, पुरस्तात् , करि-तुरग-रथस्थैः, मुदित-नृपति-सिंहैः, सिंहनादः, कृतः ; दुस्सहालोकवीरः, अरिनिनादैः , अधि-तार्थः, नागकेतुः, त्वरितम् , समरम् , प्रस्थितः ॥ ३ ॥

पदार्थ—अद्य = आज; पार्थकेतोः = [पृथा अर्थात् कुन्ती के पुत्र] अर्जुन की ध्वजा के; पुरस्तात् = सम्मुख; करि-तुरग-रथस्थैः = हाथी, घोड़े; और रथों पर आरूढ़; मुदित-नृपति-सिंहैः = प्रमुदित सिंह के समान राजाओं के द्वारा; सिंह-नादः = युद्ध-ध्वनि; कृतः = की गई है । दुस्सहालोकवीरः = दुःसह तेज वाले वीर; अरि-निनादैः = शत्रुओं के द्वारा बार-बार किए गए गर्जनों से;

(इसके बाद भट प्रवेश करता है)

भट—महाराज अङ्गाधिपति कर्ण को निवेदन करो, निवेदन करो कि—'युद्ध काल उपस्थित हो गया है ।'

आज अर्जुन के ध्वजा के सम्मुख हाथी, घोड़े और रथों पर सवार प्रसन्न सिंह के समान राजाओं के समूह; जो सिंह नाद [अर्थात् जय जयकार] कर रहे हैं और शत्रु के गर्जनों से उनके प्रयोजन को जानने वाले दुःसह तेज युक्त वीर

त्वरितमरिनिनादैर्दुस्सहालोकवीरः
समरमधिगतार्थः प्रस्थितो नागकेतुः ॥ ३ ॥

(परिक्रम्यावलोक्य) अये, अयमङ्गराजः समरपरिच्छदपरिवृतः शल्यराजेन सह स्वभवनान्निष्क्रम्येत एवाभिवर्तते। भोः! किं नु खलु युद्धोत्सवप्रमुखस्य दृष्टपराक्रमस्याभूतपूर्वो हृदयपरितापः[1]।

१. हृदयसन्तापः—इति वा पाठः।

by the war cries of the enemies, unbearably lustrous hero, has speedily proceeded to the battlefield. [3]

(*Walking about and looking*) Oh! This is the King of Aṅga (=Karṇa) surrounded by the war accessories, who leaving his palace with king Śalya—is coming to this very side (i. e. towards the battle-field). Oh! how is this unprecedented anxiety (seen) on the face of one, who is the chief, distinguished personality of the war and noted for his valour.

अधिगतार्थः = [शत्रु-प्रयोजन को] जानने वाले; नागकेतुः[1] = ध्वजा पर हाथी के चिह्न वाले [दुर्योधन]; त्वरितम् = शीघ्रता से; समरम् = संग्राम के लिए; प्रस्थितः = चल चुके हैं ॥ ३ ॥

कोष—सिंहनाद—चवेडा तु सिंहनादः स्यात्–अमरकोष २. ८. १०७। लड़ाई में सिंह के समान गर्जन के दो नाम हैं।

नागकेतु [अर्थात् जिसकी ध्वजा हाथी के चिन्ह वाली है ऐसे दुर्योधन] ने युद्ध के लिए शीघ्र ही प्रस्थान कर दिया है ॥ ३ ॥

(घूमकर और देखकर) अरे! यह अङ्गाधिप कर्ण युद्ध वेश धारण कर महाराज शल्य के साथ अपने भवन से निकलकर उसी (युद्धस्थल) की ओर जा रहे हैं। अरे! युद्ध रूपी उत्सव के प्रमुख (अर्थात् सेनापति), देखा जा चुका है अत्यन्त पराक्रम जिनका ऐसे कर्ण का यह अभूतपूर्व मानसिक संताप कैसा?

१. महान् दुर्योधनस्यासीत् नागो मणिमयो ध्वजः। महाभा० भीष्म पर्व १७.२६।

एष हि—

अत्युग्रदीप्तिविशदः समरेऽग्रगण्यः
शौर्ये च सम्प्रति [1]सशोकमुपैति धीमान्।
प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः
सूर्यः स्वभावरुचिमानिव भाति कर्णः ॥ ४ ॥

१. सधीरमुपैति—इति वा पाठः।

for he,

The wise Karṇa—shining with splendour and foremost in battle and bravery—is now approaching with unhappiness. He looks like the sun endowed with inherent lustre but obscured by masses of clouds in summer. [4]

[समराभिमुख कर्ण का वर्णन :—]

अन्वय—अति-उग्र-दीप्ति-विशदः, समरे, शौर्ये च, अग्रगण्यः, धीमान् [कर्णः], सम्प्रति, सशोकम्, उपैति। निदाघ-समये, प्राप्ते, घन-राशि-रुद्धः, स्वभाव-रुचिमान्, सूर्यः, इव, कर्णः, भाति ॥ ४ ॥

पदार्थ—अति-उग्र = अत्यन्त तीक्ष्ण तेज से चमकते हुए; समरे = युद्ध; शौर्ये च = और पराक्रम में; अग्रगण्यः = आगे रहने वाले; धीमान् [कर्णः] = बुद्धिमान् [कर्ण]; सम्प्रति = इस समय; सशोकम् = शोक-ग्रस्त; उपैति = हो रहे हैं। निदाघसमये = ग्रीष्म काल के; प्राप्ते = आ जाने पर; घनराशिरुद्धः = मेघमालाओं से आच्छादित; स्वभाव-रुचिमान् = स्वभावतः तेजस्वी; सूर्यः इव= सूर्य के समान; कर्णः, भाति = कर्ण शोभित हो रहे हैं ॥ ४ ॥

विमर्श—ग्रीष्म ऋतु में प्रचुर तेज से सम्पन्न सूर्य जिस प्रकार मेघाच्छा-

क्योंकि; यह—

अत्यन्त उग्र दीप्ति से कान्तिमान, युद्धस्थल में तथा पराक्रम में अग्रण्य [कर्ण] बुद्धिमान् [होकर भी] इस समय शोक-संतप्त हो रहे हैं। ग्रीष्मकाल में स्वभावतः तीव्र किरणों वाला सूर्य जैसे मेघमाला से आच्छादित हो जाता है उसी प्रकार [इस समय] कर्ण [शोक से आक्रान्त हुए से] शोभित हो रहे हैं ॥ ४ ॥

यावदपसर्पामि । (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति यथोक्तरूपः[1] कर्णः शल्यश्च)

कर्णः—

मा तावन्मम शरमार्गलक्षभूताः
सम्प्राप्ताः क्षितिपतयः सजीवशेषाः ।

१. यथानिर्दिष्टः—इति वा पाठः ।

Well ! let me go.

[*EXIT*]

(*Then enters Karṇa with Śalya as described above*)

Karṇa—None of the kings who became the targets of my arrows have so for gone back alive. To-day I would

दित होकर मलिन कान्ति वाला प्रतीत होता है उसी प्रकार स्वभावतः तेजस्वी कर्ण भी विषाद से कुछ मलिन हो रहे हैं ।

[कर्ण अपने अभीप्सित की कल्पना करते हैं :—]

अन्वय— मा, तावत् (अभूवन्) सम्प्राताः, मम, शर-मार्ग-लक्षभूताः, क्षितिपतयः; सजीव-शेषाः । कुरूणाम्, प्रियम्, कर्तव्यम्; [अतः] यदि, मे, रणशिरसि, सः, धनञ्जयः, द्रष्टव्यः, भवेत् ॥ ५ ॥

पदार्थ—मा तावत् (अभूवन्) = नहीं; अब तक [ऐसा कभी भी] नहीं हुआ कि; सम्प्राताः = [मेरे] सामने आए हुए; मम शर-मार्ग-लक्षभूतः = मेरे शर-संधान के लक्ष्य बनकर; क्षितिपतयः = भूपति लोग; सजीवशेषाः = जीवित रह जायँ । कुरूणाम् = कौरवों का; प्रियम् = प्रिय; कर्तव्यम् = करना चाहिए

अच्छा तो जाता हूँ ! (चला जाता है)

(इसके बाद पूर्वकथित कर्ण और शल्य प्रवेश करते हैं)

कर्ण—

नहीं, अब तक [ऐसा कभी] नहीं हुआ कि मेरे शरसंधान के लक्ष्य बनकर भूपति जीवित रह जायें । कौरवों का प्रिय करना चाहिए [अतः] यदि मुझे

कर्तव्यं रणशिरसि प्रियं कुरूणां
द्रष्टव्यो यदि स भवेद्धनञ्जयो मे ॥ ५ ॥
शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः ।

शल्यः—बाढम् । (चोदयति)

कर्णः—अहो नु खलु ।

अन्योन्यशस्त्रविनिपातनिकृत्तगात्र-
योधाश्ववारणरथेषु महाहवेषु ।

---

accomplish the pleasure of the Kurus if I see Dhanañjaya (=Arjuna) in the fore front of the battle. [5]

O king Śalya ! Drive my chariot to that very place where Arjuna is (to be found).

Śalya—Be it so (*Drives*)

Karṇa—Oh ! how is it that—

Low-spiritedness, at the hour of this battle, is seeping into the mind of even myself whose valour was like that of enraged

---

[अतः], यदि, मे रणशिरसि = यदि मुझे युद्धस्थल में; सः, धनञ्जयः = वह [मेरा विद्वेषी] अर्जुन, द्रष्टव्यः, भवेत् = दिखलाई पड़ जाय [तो मैं कौरवों का मनोरथ पूर्ण कर दूँ] ॥ ५ ॥

[कर्ण अपनी मनोदशा का वर्णन कर रहे हैं :—]

अन्वय—अन्योन्य-शस्त्र-विनिपात-निकृत्त-गात्र-योधा-अश्व-वारण-रथेषु,

---

युद्ध क्षेत्र में वह अर्जुन दिखलाई पड़ जायँ [तो मैं कौरवों का मनोरथ पूर्ण कर दूँ] ॥ ५ ॥

हे शल्यराज ! जहाँ वह अर्जुन है वहीं मेरे रथ को प्रेरित करो [अर्थात् ले चलो] ।

शल्य—बहुत अच्छा । (ले जाता है)

कर्ण—अरे, यह कैसे—

[यह विचित्र बात है कि], परस्पर शस्त्रों के प्रहार से कट रहे हैं शरीर जिनके—ऐसे योद्धाओं अश्व, हाथी और रथों वाले भयंकर युद्धों में कुपित

क्रुद्धान्तकप्रतिमविक्रमिणो ममापि
वैधुर्यमापतति चेतसि युद्धकाले ॥ ६ ॥

[स्वगतम्]

भोः ! कष्टम् ।

पूर्वं कुन्त्यां समुत्पन्नो राधेय इति विश्रुतः ।

Yama (Lord of death) in great wars where warriors, horses, elephants and choriots were hacked to pieces by the clash of weapons of each other. [6]

(*To himself*) Oh ! Alas !

(Though) first born from Kuntī (but) I am known as the

महाहवेषु, क्रुद्ध-अन्तक-प्रतिम-विक्रमिणः, मम, अपि, चेतसि, युद्धकाले, वैधुर्यम्, आपतति ॥ ६ ॥

पदार्थ—अन्योन्य-शस्त्र-विनिपात-निकृत्त-गात्र-योधा-अश्व-वारण-रथेषु = परस्पर शस्त्रों के प्रहार से कट रहे हैं शरीर जिनके ऐसे योद्धाओं, अश्व, हाथी और रथों वाले महाहवेषु = भीषण युद्धों में; क्रुद्ध-अन्तक-प्रतिम-विक्रमिणः = कुपित यमराज के सदृश-पराक्रम वाले; मम = मुझ; [कर्ण के] अपि = भी; चेतसि = चित्त में; युद्धकाले = संग्राम के समय में; वैधुर्यम् = दैन्य-भाव; आपतति = आ रहा है ॥ ६ ॥

कोष—अन्तक—कृतान्तो यमुना भ्राताशमनो यमराड्यमः ।
...वैवस्वतोऽन्तकः । अमरकोष १. १. ५

[कर्ण अपने मन में उत्पन्न वैधुर्य का कारण इस प्रकार बतलाते हैं :—]

अन्वय—पूर्वं, कुन्त्याम्, समुत्पन्नः, राधेयः, इति, विश्रुतः [अतः]

यमराज के सदृश पराक्रम वाले मुझ [कर्ण के] भी चित्त में संग्राम के समय में दैन्यभाव आपाततः आ रहा है ॥ ६ ॥

ओह ! महान् कष्ट है—

प्रथमतः कुन्ती से उत्पन्न होकर मैं राधेय [अर्थात् राधा के पुत्र के] नाम

युधिष्ठिरादयस्ते मे यवीयांसस्तु[1] पाण्डवाः ॥ ७ ॥
अयं स कालः क्रमलब्धशोभनो
गुणप्रकर्षो दिवसोऽयमागतः ।

१. °यांसश्च—इति वा पाठः ।

son of Rādhā. They, Yudhiṣṭhira and the other Pāṇḍavas are really my younger brothers. [7]

Here is the hour, gained gradually and glorious; and here has come the day excellent on account of (heroic) merits.

युधिष्ठिरादयः, ते, पाण्डवाः, तु, मे, यवीयांसः [एव सन्ति] ॥ ७ ॥

पदार्थ—पूर्वम् = प्रथमतः; कुन्त्याम् = कुन्ती से; समुत्पन्नः = उत्पन्न होकर; 'राधेयः' = राधा का पुत्र; इति = इस [नाम] से; विश्रुतः = प्रसिद्ध हुआ । युधिष्ठिरादयः = [इसलिए] युधिष्ठिर आदि; ते = वे; पाण्डवाः = पाण्डव, तु = तो; मे = मेरे; यवीयांसः = छोटे भाई [एव सन्ति = ही हैं] ॥७॥

विमर्श—१. राधा ने ही कर्ण का लालन पालन किया था । इसीलिए इन्हें राधा के पुत्र [= राधेय] इस नाम से अभिहित किया जाता है ।

२. प्रस्तुत श्लोक में कर्ण यह कहना चाहते हैं कि जब पाण्डव मेरे छोटे भाई हैं तो उनका वध युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि कहा भी है कि अनुजाः पुत्रसमाः ख्याताः ।

[द्विविधा में पड़े हुए कर्ण इस प्रकार विचार कर रहे हैं :—]

अन्वय—क्रम-लब्ध-शोभनः, अयम् सः, कालः, [यः चिरप्रतीक्षितमासीत्]; गुणप्रकर्षः, अयम्, दिवसः, आगतः । हि, मया, शिक्षितम्, अस्त्रम्, निरर्थम्; पुनः, मातुः, वचनेन, वारितः, च [अस्मि] ॥ ८ ॥

से [जगत् में] प्रसिद्ध हुआ [अतः] युधिष्ठिर आदि पाँचो पाण्डव मेरे छोटे भाई ही हैं ॥ ७ ॥

यह समय जो अत्यन्त सुन्दर और अनेक दिनों से प्रतीक्षित दिन था आज आ गया है किन्तु मेरे द्वारा प्राप्त [आग्नेयादि विशिष्ट] अस्त्र की शिक्षा इस

निरर्थमस्त्रं च मया हि शिक्षितं
पुनश्च मातुर्वचनेन वारितः ॥ ८ ॥

[प्रकाशम्]

भोः ! शल्यराज,[1] श्रूयतां ममास्त्रस्य वृत्तान्तः ।

१. मद्रराज—इति वा पाठः ।

On the other hand the training of weapons learnt by me is in vain and I am also checked by the words of my mother. [8]

(Aloud) O king Śalya ! please listen to the account of my (training in) weapons.

पदार्थ—क्रमलब्ध-शोभनः—दिन क्रम से प्राप्त सुन्दर; अयम् = यह; सः कालः = वह काल [जिसकी बहुत दिनों से प्रतीक्षा थी]; गुण-प्रकर्षः = उपयुक्त गुणों से प्रकृष्ट; अयम्, दिवसः = यह दिन; [अथवा गुण अर्थात् धनुष की डोरी—उससे श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ यह दिन[1]]; आगतः = आ गया है। हि = यतः; मया = मुझ [कर्ण] के द्वारा; शिक्षितम् = [गुरु परशुराम से प्राप्त करके] अभ्यस्त; अस्त्रम् = [जो आग्नेय आदि विशिष्ट] आयुध हैं वे सभी; निरर्थम् = [गुरु के शाप से] निरर्थक [हैं] । पुनः = और फिर [मैं] मातुः = माता [कुन्ती] के वचनेन = वचन के द्वारा; वारितः च = [युधिष्ठिर आदि पर इन अस्त्रों को न चलाने के लिए] वारित भी [किया गया हूँ] ॥ ८ ॥

विमर्श—इस श्लोक में भी कर्ण के द्वारा वैधुर्य का ही भाव प्रस्तुत किया गया है। इसी सन्दर्भ में वे अपने अस्त्रों को दो कारणों से व्यर्थ भी पाते हैं—एक तो परशुराम के शाप से वे बेकार हैं; दूसरे वे माँ के द्वारा रोके भी गए हैं।

समय व्यर्थ है और फिर मैं तो माता के वचन के द्वारा [युधिष्ठिरादि अपने छोटे भाईयों पर अस्त्र न चलाने के लिए] मना भी किया गया हूँ ॥ ८ ॥

हे शल्यराज ! मेरे अस्त्रों का वृत्तान्त सुनो।

१. क्षत्रियों के लिए युद्ध का ही समय अत्यन्त उत्कृष्ट होता है क्योंकि इसी में उनके क्षात्रबल की परीक्षा होती है ।

शल्यः—ममाप्यस्ति कौतूहलमेनं वृत्तान्तं श्रोतुम् ।
कर्णः—पूर्वमेवाहं जामदग्न्यस्य सकाशं गतवानस्मि ।
शल्यः—ततस्ततः ।
कर्णः—ततः,

विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलाप-
मुद्यत्प्रभावलयिनं परशुं दधानम् ।

Śalya—I, too, have the curiosity to listen to this narrative.
Karṇa—At the early age, I had gone to Paraśurāma (the son of Jamadagni).
Śalya—What next.
Karṇa—Then--

Approaching the excellent sage, banner of the Bhṛgu family, destroyer of the Kṣatriyas, having lofty mass of matted

[गुरु परशुराम के दर्शन का वर्णन कर्ण इस प्रकार करते हैं :—]

अन्वय—विद्युत्-लता-कपिल-तुङ्ग-जटा-कलापम्, उद्यत्-प्रभावलयिनम्, परशुम्, दधानम्, क्षत्रान्तकम्, मुनिवरम्, भृगुवंश-केतुम्, निकटे, गत्वा, प्रणम्य, निभृतः, स्थितः, अस्मि ॥ ९ ॥

पदार्थ—विद्युत-लता-कपिल-तुङ्ग-जटा-कलापम्=बिजली की लता [अर्थात् आकाश में विद्युत् की तड़क से बनी हुई लता] के सदृश; = पीली और लम्बी जटा के समूह [को धारण करने] वाले; उद्यत्-प्रभा-वलयिनम् = ऊपर को उठती हुई कान्ति के मण्डल से परिवेष्टित; परशुम्=कुठार को; दधानम्=धारण

शल्य—इस वृत्तान्त को सुनने का मुझे भी बड़ा कौतूहल है ।
कर्ण—पहले मैं जामदग्न्य [अर्थात् जमदग्नि के पुत्र परशुराम] के पास गया था ।
शल्य—तब फिर ।
कर्ण—तब—

विद्युत्-लता के समान पीली और लम्बी जटाओं के समूह एवं ऊपर को उठती हुई प्रभा की परिधि से फिरे हुए परशु [फरसा] को धारण करने वाले,

क्षत्रान्तकं मुनिवरं भृगुवंशकेतुं
गत्वा प्रणम्य निकटे निभृतः स्थितोऽस्मि ॥ ९ ॥

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततो जामदग्न्येन ममाशीर्वचनं दत्त्वा पृष्टोऽस्मि—को भवान्, किमर्थमिहागत इति[1] ।

शल्यः—ततस्ततः ।

---

१. इत्युक्तः—इति वा पाठः ।

---

hair (which was) tawny like streaks of lightening, holding Paraśu (the battle axe) surrounded by the lustre arising from it (and) after saluting I stood still close to him. [9]

Śalya—What further ?

Karṇa—Then, after blessing me, the son of Jamadagni (= Parśurāma) enquired—who are you, and why have you come here ?

Śalya—What then ?

करने वाले; क्षत्रान्तकम् = क्षत्रिय जाति का विनाश करने वाले; मुनि-वरम् = मुनियों में श्रेष्ठ; भृगुवंश-केतुम् = भृगुकुल की पताका [के समान परशुराम] के; निकटे = समीप में, गत्वा = जाकर; प्रणम्य = [और] प्रणाम करके; निभृतः = मौन धारण किए हुए; स्थितः, अस्मि[1] = अवस्थित हो गया ॥ ९ ॥

क्षत्रियों का विनाश करने वाले, मुनियों में श्रेष्ठ, और भृगुवंश के ध्वजा स्वरूप [परशुराम] के पास जाकर [मैं उन्हें] प्रणाम करके चुपचाप खड़ा हो गया ॥९॥

शल्य—तब फिर ।

कर्ण—तब परशुराम ने आशीर्वाद देकर [मुझसे] पूछा कि—"आप कौन हैं ? और क्यों यहाँ आए हैं ।"

शल्य—तब फिर ।

---

१. यहाँ लट् लकार का प्रयोग भूतकाल के अर्थ में हुआ है (सूत्र—भूतार्थेलट्···) ।

कर्णः—ततः भगवन् [1]अखिलान्यस्त्राण्युपशिक्षितुमिच्छामीत्युक्तवानस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—तत उक्तोऽहं भगवता—ब्राह्मणेषूपदेशं करिष्यामि, न क्षत्रियाणाम्-इति ।

शल्यः—अस्ति खलु भगवतःक्ष त्रियवंश्यैः पूर्ववैरम् । ततस्ततः ।

कर्णः—ततो नाहं क्षत्रिय इत्यस्त्रोपदेशं ग्रहीतुमारब्धं[2] मया ।

शल्यः—ततस्ततः ।

१. निं—इति वा पाठः । २. आरब्धः—इति वा पाठः ।

Karṇa—Then I told him 'Revered Sir ! I wish to learn the use of all types of weapons.

Śalya—And then ?

Karṇa—Then, the sage told me—I shall teach only the Brāhmaṇas and not the Kṣatriyas.

Śalya—The Revered sage, indeed, had former enemity with the warrior class. What further ?

Karṇa—Then–I am not a Kṣatriya, saying this I began to learn the use of weapons.

Śalya—What next ?

कर्ण—इसके बाद हमने यह कहा कि 'हे भगवन् ! मैं समस्त अस्त्र विद्या सीखना चाहता हूँ ।'

शल्य—तब फिर ।

कर्ण—तब भगवान् परशुराम ने मुझसे कहा कि 'मैं केवल ब्राह्मणों को ही [अस्त्रविद्या का] उपदेश देता हूँ; क्षत्रियों को नहीं ।'

शल्य—हाँ भगवान् जामदग्न्य को क्षत्रिय वंश से पुराना वैर है । तब फिर ।

कर्ण—तब, 'मैं क्षत्रिय नहीं हूँ' [ऐसा कहकर] मैंने अस्त्र का उपदेश लेना प्रारम्भ कर दिया ।

शल्य—तब फिर ।

कर्णः—ततः [1]किञ्चित्कालातिक्रमे कदाचित् [2]फलमूलसमित्कुश-कुसुमाहरणाय गतवता गुरुणा सहानुगतोऽस्मि ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः स गुरुर्वनभ्रमणपरिश्रमान्मदङ्के निद्रावशमुपगतः ।

शल्यः—ततस्ततः ।

कर्णः—ततः,

---

१. कतिपयदिवसाति°—इति वा पाठः ।

Karṇa—And then, after some time, I once followed my teacher who went to fetch fruits, roots, sacred grass, flowers and fuel.

Śalya—What then ?

Karṇa—Then, (tired) by the exertion of wandering in the forest my teacher fell asleep (with his head) on my lap.

Śalya—Well, proceed.

Karṇa—Thereafter—

कर्ण—तब वे गुरु वन में भ्रमण करने के परिश्रम से [थककर] मेरी गोद में ही सो गए ।

शल्य—तब फिर क्या हुआ ?

कर्ण—तब,

कर्ण—तब कुछ काल व्यतीत हो जाने पर एक बार फल, मूल, समिधा, कुश एवं कुसुम लाने के लिए जाते हुए गुरु के साथ मैं भी [जंगल को] गया ।

शल्य—तब फिर ।

कृत्ते वज्रमुखेन नाम कृमिणा दैवान्ममोरुद्वये
निद्राच्छेदभयादसह्यत गुरोर्धैर्यात् तदा वेदना।
उत्थाय क्षतजाप्लुतः[1] स सहसा रोषानलोद्दीपितो
बुद्ध्वा मां च शशाप कालविफलान्यस्त्राणि ते सन्त्विति ॥१०॥

१. जोक्षितः—इति वा पाठः।

By misfortune an insect called Vajramukha (steely-teeth) bit both of my thighs. Afraid of disturbing my teacher's slumber, I bore the pain with fortitude. Smeared with blood (gushing from my thighs) he awoke and knowing me (to be a Kṣatriya by my endurance), blazing with the fire of anger uttered the curse 'useless be your weapons at the very moment of your need.' [10]

[आठवें श्लोक में कही गई अपने अस्त्रों की विफलता का कारण कर्ण इस प्रकार बतलाते हैं :—]

अन्वय—दैवात्, वज्रमुखेन, नाम, कृमिणा, मम, ऊरुद्वये, कृत्ते, तदा, गुरोः, निद्राच्छेदभयात्, धैर्यात्, [सा] वेदना, [मया] असह्यत। क्षतजाप्लुतः, सः, उत्थाय, माम् [क्षत्रियोऽयम् इति] बुद्ध्वा, सहसा, रोष-अनल-उद्दीपितः—'ते, अस्त्राणि, काल-विफलानि, सन्तु'—इति, शशाप ॥१०॥

संयोग से वज्रमुख नामक कीड़े के द्वारा मेरी दोनों जाघों में काट लिया जाने पर उस समय [सोये हुए] गुरु के निद्रा-भंग के भय से मैंने उस पीड़ा को धैर्यपूर्वक सहन कर लिया। दंश से निकले हुए रक्त से भींगे हुए वे उठकर [मुझे क्षत्रिय] पहचानकर सहसा क्रोधाग्नि से उद्दीप्त होते हुए [उन्होंने] '[प्रयोग का] समय आने पर तुम्हारे अस्त्र निष्फल होवें'—ऐसा मुझे शाप दे दिया। — ॥ १० ॥

शल्यः—अहो कष्टमभिहितं तत्रभवता।

कर्णः—परीक्षामहे तावदस्त्रस्य वृत्तान्तम्। (तथा कृत्वा) एतान्यस्त्राणि निर्वीर्याणीव लक्ष्यन्ते। अपि च—

Śalya—Oh! What a dreadful thing was uttered by him.

Karṇa—Meanwhile, let us test the account of the weapons. (*Doing accordingly*) These weapons appear to be ineffectual. Moreover—

पदार्थ—दैवात् = दैवयोग से; वज्रमुखेन[1] नाम = वज्रमुख नामक, कृमिणा = कीड़े के द्वारा; मम = मेरी (अर्थात् कर्ण की); ऊरु-द्वये = दोनों जाँघों में; कृत्ते = काट लेने पर, तदा = उस समय, गुरोः = गुरु [परशुराम] की; निद्राच्छेद-भयात् = निद्रा-भंग के भय से; धैर्यात् = [क्षत्रियोचित] धैर्य के साथ; [सा] वेदना = वह पीड़ा [मया = मेरे द्वारा]; असह्यत = सह ली गई। क्षतजाप्लुतः = दंश जन्य [मेरे] रुधिर से भींगे हुए; सः=वे [गुरुदेव]; उत्थाय = उठकर; माम् = मुझे [क्षत्रियोऽयम् = 'यह क्षत्रिय है' ऐसा] बुद्ध्वा = पहचानकर; सहसा = एकाएक; रोष-अनल-उद्दीपितः = क्रोधाग्नि से उद्दीप्त होते हुए [उन्होंने]; ते = तुम्हारे; अस्त्राणि = [वे] आयुध [जो हमारे द्वारा सिखाए गए हैं]; काल-विफलानि = [प्रयोग का] समय आने पर फल-रहित; सन्तु = होवें—इति शशाप = ऐसा शाप दे दिया ॥ १० ॥

विमर्श—परशुराम के द्वारा यह शाप दे दिया गया था कि युद्ध काल में जब इन अस्त्रों के प्रयोग का समय आएगा तो मेरे द्वारा सिखाई गई यह विद्या तुम्हें विस्मृत हो जाएगी। इसीलिए आज सब कुछ सीखा हुआ निरर्थक ही है—निरर्थमस्त्रं च मया हि शिक्षितम्……॥ ८ ॥—इस प्रकार आठवें श्लोक में कर्ण द्वारा कहा भी गया है।

शल्य—अरे! उन महानुभाव ने बड़ी कष्टकर बात कही।

कर्ण—अतः इस अस्त्र के वृतान्त की परीक्षा तबतक मैं करता हूँ। (वैसा करके) ये अस्त्र भी निर्बल से दिखाई पड़ते हैं। और भी—

१. द्र०—परिशिष्ट ५, पृष्ठ ५२।

इमे हि दैन्येन निमीलितेक्षणा
मुहुः स्खलन्तो विवशास्तुरङ्गमाः।
गजाश्च सप्तच्छददानगन्धिनो
निवेदयन्तीव रणे निवर्तनम् ॥ ११ ॥
शङ्खदुन्दुभयश्च निःशब्दाः ।

These horses—their eyes closed with misery, frequently stumbling and helpless and also the elephants perfumed by the rut that smells like the aspen leaf (Saptacchada) appear to be suggesting (our) return from the battle. [11]

The conches and even kettle-drums have become soundless.

[इसके अलावा भी अभीष्ट की असफलता के जो कारण कर्ण को दिखाई दे रहे हैं वे इस प्रकार हैं :—]

अन्वय—हि, दैन्येन, निमिलितेक्षणाः, मुहुः, स्खलन्तः; इमे, तुरङ्गमाः, विवशाः [दृश्यन्ते]। सप्तच्छद-दान-गन्धिनः, गजाः, च, रणे, निवर्तनम्, निवेदयन्ति, इव ॥ ११ ॥

पदार्थ—हि = क्योंकि; दैन्येन = दीनता के कारण; निमीलित-ईक्षणाः = झपकती हुई आँखों वाले; मुहुः = बार-बार; स्खलन्तः = लड़खड़ाते हुए; इमे = ये; तुरङ्गमाः = घोड़े; विवशाः [दृश्यन्ते] = विवश [अर्थात् पराधीन दिखलाई पड़ रहे हैं] सप्तच्छद[1]-दान-गन्धिनः = सप्तच्छद [सप्तपर्ण, या विषमच्छद अर्थात् जिसके सात पत्ते होते हैं अथवा विषम-संख्यक पत्रों वाले] वृक्ष के समान मद की गन्ध वाले; गजाः च = हाथी भी; रणे = युद्ध से; निवर्तनम् = लौट चलने का; निवेदयन्ति, इव = निवेदन सा कर रहे हैं ॥ ११ ॥

क्योंकि दीनभाव के कारण झपकती हुई आखों वाले बारम्बार लड़खड़ाते हुए ये घोडे विवश से जान पड़ते हैं। सप्तच्छद के समान मद की गन्ध वाले हाथी भी [दीन होकर जैसे] रणस्थल से लौट चलने का निवेदन सा कर रहे हैं ॥ ११ ॥

शङ्ख और दुन्दुभियाँ भी निःशब्द हो गई हैं।

१. द्र०—परिशिष्ट ५ पृष्ठ ५२ ।

शल्यः—भोः ! कष्टं किं नु खल्विदम् ।
कर्णः—शल्यराज ! अलमलं विषादेन । [हि-]

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः ।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥ १२ ॥

Śalya—Oh ! Alas ! how is it ?

Karṇa—O King Śalya ! do'nt be dismayed; because—

[If] slain, one attains heaven, [if] victorious one obtains glory. Both are highly esteemed in this world, so, there is nothing futile in war. [12]

[कर्ण युद्ध के उभय पक्ष की सार्थकता इस प्रकार बतलाते हैं :—]

अन्वय—[संग्रामे] हतः, अपि, स्वर्गम्, लभते; जित्वा, तु, यशः, लभते; लोके, उभे, बहुमते, [अतः कथमपि] रणे, निष्फलता, न, अस्ति ॥ १२ ॥

पदार्थ—[संग्रामे] हतः अपि = (युद्ध स्थल में) मारे जाकर भी; स्वर्गम् = स्वर्गलोक को; लभते = प्राप्त करता है । जित्वा तु = विजय प्राप्त करके तो; यशः लभते = कीर्ति [ही] प्राप्त कर लेता है । लोके = संसार में; उभे = दोनों [ही] बहुमते = सम्मानित [हैं]; [अतः कथमपि = इसलिए किसी भी प्रकार से] रणे = संग्राम में; निष्फलता = असफलता; न अस्ति = नहीं है ॥ १२ ॥

शल्य—ओह ! बड़ा कष्ट है; यह सब क्या है ?

कर्ण—हे शल्यराज ! विषाद करना व्यर्थ है । [क्योंकि—]

युद्धस्थल में मारे जाने पर भी स्वर्ग को प्राप्त करता है और जीतने पर तो यश [ही] प्राप्त कर लेता है । अतः लोक में दोनों ही अधिक संमाननीय [माने गए] हैं । इसलिए [किसी भी तरह] युद्ध में असफलता नहीं है ॥ १२ ॥

अपि च—

इमे हि युद्धेष्वनिवर्तिताशा
हयाः सुपर्णेन समानवेगाः ।
श्रीमत्सु काम्बोजकुलेषु जाताः
रक्षन्तु[1] मां यद्यपि रक्षितव्यम् ॥ १३ ॥

१२. रक्षन्त्वमी इति वा पाठः ।

Moreover—

These steeds swift as Garuḍa, born of the noble stock of Kāmboja horses, who have never disappointed me in battles, may protect me, if I am worthy of protection. [13

अन्वय—हि, युद्धेषु, अनिवर्तिताशाः, सुपर्णेन, समानवेगाः, श्रीमत्सु, काम्बोजकुलेषु जाताः, इमे, हयाः, यद्यपि, रक्षितव्यम् (तर्हि) माम्, रक्षन्तु ॥ १३ ॥

पदार्थ—हि = क्योंकि, युद्धेषु = विगत संग्रामों में; अनिवर्तिताशाः = [जो अश्व मेरी] आशाओं को निष्फल न करने वाले [रहे हैं]; सुपर्णेन = गरुड़ के; समानवेगाः = समान वेगवान् ; श्रीमत्सु = शोभा सम्पन्न; काम्बोज-कुलेषु जाताः = कम्बोज प्रदेश के अश्वों के कुल में उत्पन्न; इमे = ये; हयाः = घोड़े; यद्यपि रक्षितव्यम् = यदि मैं रक्षा करने योग्य होऊँ [तर्हि = तो]; माम् = [ये] मेरी; रक्षन्तु = रक्षा करें ॥ १३ ॥

विमर्श—इस श्लोक में अश्वों से अपनी रक्षा की कामना के द्वारा महाकवि ने कर्ण की अत्यन्त दैन्य-अवस्था का भाव प्रदर्शित किया है ।

कोष—सुपर्ण—नागान्तको विष्णुरथः सुपर्णः पन्नगाशनः । अमरकोष १. १. २९ ।

और भी—

युद्ध में जो अभिलाषाओं को निष्फल न करने वाले [रहे हैं], जो गरुड़ के समान वेगवान् हैं ऐसे कान्तिमान् कम्बोज प्रदेश के [अश्वों के] कुलों में उत्पन्न ये काबुली घोड़े यदि मैं रक्षा करने योग्य होऊँ [तो ये] मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥

अक्षयोऽस्तु गोब्राह्मणानाम्। अक्षयोऽस्तु पतिव्रतानाम्। अक्षयोऽस्तु रणेष्वपराङ्मुखानां यौधपुरुषाणाम्। अक्षयोऽस्तु मम प्राप्तकालस्य। एष भोः, प्रसन्नोऽस्मि।

समरमुखमसह्यं पाण्डवानां प्रविश्य
प्रथितगुणगणाढ्यं धर्मराजं च बद्ध्वा।
मम शरवरवेगैरर्जुनं पातयित्वा
वनमिव हतसिंहं सुप्रवेशं करोमि ॥ १४ ॥

May cows and Brāhmaṇas always prosper. Good luck to chaste and virtuous wives. Good luck to warriors who do not turn their backs in battle. Good luck to me also whose time has come, Oh ! now I am really pleased.

I shall enter the terrible ranks of the Pāṇḍavas, and after capturing Yudhiṣṭhira, rich in his many famous virtues i.e. truth, etc.) and overthrowing Arjuna by the speed of my excellent arrows, will make it easily accessible like the forest where the lions have been slain. [14]

[प्रस्तुत श्लोक में कर्ण अपने अभिलषित का कथन इस प्रकार कर रहे हैं :—]

अन्वय—पाण्डवानाम्, असह्यम्, समरमुखम्, प्रविश्य, च, प्रथितगुणगणाढ्यम्, धर्मराजम्, बद्ध्वा, मम, शर-वर-वेगैः, अर्जुनम्, पातयित्वा, हतसिंहम्, वनम्, इव, [पाण्डवसैन्यम्] सुप्रवेशम्, करोमि ॥ १४ ॥

गो-ब्राह्मणों का कल्याण हो। सती स्त्रियों का कल्याण हो। रण में पीठ न दिखाने वाले वीर योद्धाओं का कल्याण हो। इस प्रकार सुअवसर प्राप्त मेरा भी कल्याण हो। ओह ! अब मैं प्रसन्न हूँ।

पाण्डवों के रण की कठिन रक्षापंक्ति में प्रवेश करके अत्यन्त प्रसिद्ध सद्गुणों से सम्पन्न धर्मराज [युधिष्ठिर] को बाँधकर अपने श्रेष्ठ बाणों की तीव्रता से अर्जुन को गिराकर [उस दुर्गम पाण्डवों की सेना को] मार दिए गए सिंह वाले [निरापद] जङ्गल की भाँति सुखपूर्वक प्रवेश के योग्य कर दूँगा ॥ १४ ॥

शल्यराज ! यावद् रथमारोहावः ।

शल्यः—बाढम् ।

(उभौ रथारोहणं नाटयतः)

कर्णः—शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः ।

O King Śalya ! now let us mount the chariot.

Śalya--Be it so.

(*Both gesticulate mounting the chariot*)

Karṇa--O King Śalya ! Drive my chariot to that very place where Arjuna is (to be found).

पदार्थ—पाण्डवानाम् = [महाराज पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर आदि पाँचो] पाण्डवों के; असह्यम् = दुःसह; समरमुखम् = युद्ध के अग्रभाग अर्थात् रक्षापंक्ति में; प्रविश्य = प्रवेश करके; च = और; प्रथितगुणगणाढ्यम् = [सत्य वचन आदि] प्रसिद्ध सद्गुणों के समूह से सम्पन्न; धर्मराजम् = युधिष्ठिर को; बद्ध्वा=[पाश में] बाँधकर, मम=अपने; शर-वर-वेगैः=श्रेष्ठ बाणों के वेग से; अर्जुनम् = अर्जुन को; पातयित्वा = गिराकर; हतसिंहम् = मार दिए गए सिंह वाले; वनम् इव = जङ्गल की भाँति [पाण्डवों की सेना में]; सुप्रवेशम् = सुख से प्रवेश के योग्य; करोमि = करता हूँ ॥ १४ ॥

विमर्श—वीरों को मारकर युद्ध-मार्ग सुलभ करूँगा और युधिष्ठिर को बाँधकर और अर्जुन को मारकर पाण्डवों की सेना को जीत लूँगा—इस प्रकार का संकल्प कर्ण के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। युद्ध में युधिष्ठिर को इसलिए मारने की बात कर्ण द्वारा नहीं कही गई क्योंकि कुन्ती से उसने पहले ही वचन दिया था कि मैं अर्जुन को ही मारूँगा; बाकी को नहीं। यहाँ दृष्टान्तालङ्कार है। क्योंकि उदाहरण देकर अपनी उक्ति को समझाया गया है।

शल्यराज ! तबतक हम लोक रथ पर चढ़े।

शल्य—बहुत अच्छा।

(दोनों रथ पर चढ़ने का नाटक करते हैं)

कर्ण—शल्यराज ! जहाँ वह अर्जुन है वहीं मेरे रथ को प्रेरित को।

(नेपथ्ये)

भो कण्ण ! महत्तरं भिक्खं याचेमि । [भोः कर्ण ! महत्तरां भिक्षां याचे ।]

कर्णः—(आकर्ण्य) अये वीर्यवान् शब्दः ।

श्रीमानेष[1] न केवलं द्विजवरो यस्मात् प्रभावो महा-
नाकर्ण्य स्वरमस्य धीरनिनदं[2] चित्रार्पिताङ्गा इव ।

१. नेव—इति वा पाठः । २. धीरमधुरम्—इति वा पाठः ।

(*Behind the curtain*)

O Karṇa ! I beg for a greater alm.

Karṇa—(*listening*) Oh ! what a powerful voice.

He is not only a good Brāhmaṇa but a dominating person, consequently he has great dignity; so my moving horses on hearing his deep voice are suddenly standing as if they have

[भिक्षा माँगने वाले ब्राह्मण का माहात्म्य कर्ण इस प्रकार बतला रहे हैं :—]

अन्वय—एषः, केवलम्, द्विजवरः, न [अपितु कश्चित्] श्रीमान्, [अस्ति] । यस्मात् [अस्य], महान्, प्रभावः [वर्तते] । अस्य, धीरनिनदम्, स्वरम्, आकर्ण्य, यान्तः, मम, एते, हयाः, सहसा, उत्कर्ण-स्तिमित-अञ्चित-अग्र-वलित-ग्रीव-अर्पित-अग्र-आननाः, अस्त्रवशाङ्गयष्टि, चित्रार्पिताङ्गाः, इव, तिष्ठन्ति ॥ १५ ॥

(नेपथ्य में)

हे कर्ण ! मैं बहुत बड़ी भिक्षा माँगता हूँ ।

कर्ण— (सुनकर) ओह, यह तो बड़ा ओजस्वी शब्द है ।

(क्योंकि)

यह केवल साधारणतः श्रेष्ठ ब्राह्मण ही नहीं अपितु कोई ऐश्वर्यवान् व्यक्ति है, क्योंकि इसका प्रभाव व्यापक है; इसलिए गम्भीर घोष वाले स्वर को सुनकर

उत्कर्णस्तिमिताञ्चिताक्षवलितग्रीवार्पिताग्राननाः
स्तिष्ठन्त्यस्ववशाङ्गयष्टि सहसा यान्तो ममैते हयाः ॥ १५॥

no control over their limbs which look like painted ones, with their ears pointing upwards, their beautiful eyes slightly closed, and their muzzles resting upon their arched necks.[15]

पदार्थ—एषः = [शब्दोच्चारण करने वाला] यह; केवलम् = एकमात्र; द्विज-वरः न = श्रेष्ठ ब्राह्मण; [ही] नहीं [अपितु कोई]; श्रीमान् [अस्ति]= शोभा सम्पन्न [व्यक्ति है]। यस्मात् = क्योंकि; [अस्य] महान् प्रभावः [वर्तते] = [इसका] व्यापक माहात्म्य [है]; अस्य = इस [याचक] के; धीरनिनदम्=गम्भीरघोष वाले; स्वरम् = स्वर को; आकर्ण्य = सुनकर; यान्तः= [सरपट] दौड़ते हुए; मम = मेरे; एते = ये; हयाः = घोड़े; सहसा = एकाएक; उत्कर्ण-स्तिमित-अञ्चित-अक्ष-वलित-ग्रीवा-अर्पिता-अग्र-आननाः=कान खड़ा किए हुए, एकटक, तथा मनोहर दृष्टि वाले, एवं मुड़ी हुई गर्दन पर मुख के अग्रभाग को लगाए हुए; अस्ववशाङ्गयष्टि = बेकाबू शरीर वाले; चित्रार्पिताङ्गाः = चित्र-लिखित की; इव = भाँति; तिष्ठन्ति = खड़े हो गए हैं। अर्थात् आगन्तुक याचक के उद्घोष के प्रभाव से ही ये घोड़े चित्रलिखित के समान (जैसे चित्र में एकदम अचल रूप में रहते हैं उसी प्रकार) हो गए ॥ १५ ॥

कोष—निनद—शब्दो निनादनिनदध्वनिध्वानरवस्वनाः, अमरकोष १. ६. २२।

समास—उत्कर्णस्तिमित··· = उत्कर्णाः—उद्गता कर्णाः येषां ते = उत्थितश्रवणाः; स्तिमितानि निमीलितानि, अञ्चितानि शोभनानि, अक्षीणि नेत्राणि येषां ते; वलितायां वक्रायां, ग्रीवायां शिरोधरायाम्; अर्पितानि दत्तानि; अग्राननानि मुखाग्रभागा यैः ते—कर्मधारय समास तीन बहुव्रीहि के साथ है।

अस्ववशाङ्गयष्टि = स्ववशा न भवति इति अस्ववशा अङ्गयष्टिः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा—बहुव्रीहि समास।

मेरे चलते हुए ये घोड़े, कान खड़े करके, निर्निमेष दृष्टि से गर्दन टेढ़ी करके उसी ओर देखते हुए एकाएक खड़े हो गए जैसे चित्रलिखित से हों और उनका अपने शरीर पर कुछ वश ही न रह गया हो ॥ १५ ॥

आहूयतां स विप्रः । न न; अहमेवाह्वयामि । भगवन् ! इत इतः ।

(ततः प्रविशति ब्राह्मणरूपेण शक्रः)

शक्रः—भो मेघाः ! सूर्येणैव निवर्त्य गच्छन्तु भवन्तः । (कर्णमुपगम्य) भो कण्ण ! महत्तरं भिक्खं याचेमि । [भोः कर्ण ! महत्तरां भिक्षां याचे ।]

कर्णः—दृढं प्रीतोऽस्मि भगवन् !

यातः कृतार्थगणनामहमद्य लोके
राजेन्द्रमौलिमणिरञ्जितपादपद्मः ।

Please call that Brāhmaṇa. No, no, I shall myself call him. Venerable Sir ! Come this way, this way.

(Then enters Indra, disguised as a Brāhmaṇa)

Śakra—O clouds ! return with the sun alone, please go. *(approaching Karṇa)* O Karṇa ! I beg for a greater alm.

Karṇa—I am greatly delighted, O Venerable Sir !

I, whose lotus like feet are respected by the diademgems of mighty monarchs, have come to be counted today as a

---

[यहाँ पर ब्राह्मण के दर्शन से और उसके आशीर्वाद लाभ से अपने को कृतकृत्य मानने वाले कर्ण कहते हैं :—]

अन्वय—राजेन्द्र-मौलि-मणि-रञ्जित-पाद-पद्मः, अहम्, अद्य, लोके, कृतार्थ-

---

उस ब्राह्मण को बुलाओ । नहीं, नहीं । मैं ही बुलाता हूँ । भगवन् ! इधर आइए, इधर आइए ।

(इसके बाद ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र प्रवेश करते हैं)

शक्र—हे मेघ ! सूर्य के ही साथ तुम सब [उसे आच्छादित करते हुए] चले जाओ । (कर्ण के समीप पहुँचकर) हे कर्ण ! बहुत बड़ी भिक्षा माँग रहा हूँ ।

कर्ण—हे भगवन् ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।

महाराजाओं के मणिमय मुकुट से शोभित चरण-कमल [अर्थात् जिसके पैरों पर अनेक राजा झुकते हैं] वाला मैं [कर्ण] आज संसार में कृतकृत्यों की

विप्रेन्द्रपादरजसा तु पवित्रमौलिः
कर्णो भवन्तमहमेष नमस्करोमि ॥ १६ ॥

successful man in this world. Having my crown now purified by the dust of the feet of the great Brāhmaṇas, I, Karṇa, am here bowing down to you. [16]

गणनाम्, यातः, अहम्, तु, विप्रेन्द्र-पाद-रजसा, पवित्र-मौलिः, एषः, अहम्, कर्णः, भवन्तम्, नमस्करोमि ॥ १६ ॥

पदार्थ—अद्य = इस समय, लोके = संसार में; राजेन्द्र-मौलि-मणि-रञ्जित-पाद-पद्मः = राजाओं महाराजाओं के मुकुट-मणियों से सुशोभित चरण-कमल वाला; अहम् = मैं [कर्ण] कृतार्थगणनाम् = कृतार्थ अर्थात् परितृप्तों की गणना को; यातः=प्राप्त हुआ। तु = किन्तु [इस समय]; विप्रेन्द्र-पाद-रजसा= श्रेष्ठ ब्राह्मणों की चरण-रज से, पवित्रमौलिः = पवित्र मस्तक वाला; एषः = यह [आपके सामने स्थित]; अहम् = मैं; कर्णः = कर्ण; भवन्तम् = आपको; नमस्करोमि = प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥

विमर्श—प्रस्तुत श्लोक में कर्ण के चरित्र के दो चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। १—वह कर्ण जो राजाओं महाराजाओं से पूजित होने वाला है। २—वही कर्ण एक ब्राह्मण के आने से अपने को ब्राह्मण की चरण-धूलि से पवित्र मस्तक वाला समझता है। इस प्रकार उनके चरित्र में कहीं भी अभिमान की झलक नहीं है।

प्रस्तुत श्लोक में मौलि शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है। पहले बार में राजेन्द्रों के मस्तक कर्ण की चरण-रज से पवित्र होते हैं। दूसरे बार में ब्राह्मण की चरण-रज से कर्ण अपने को पवित्र-मस्तक वाला मानते हैं। इस प्रकार ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का दिग्दर्शन किया गया है।

गणना को प्राप्त हुआ। ब्राह्मण-श्रेष्ठ के चरणों की धूलि से पवित्र मस्तक वाला यह मैं कर्ण आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥

शक्रः—(आत्मगतम्) किं नु खलु मया वक्तव्यम्, यदि दीर्घायुर्भवेति वक्ष्ये; दीर्घायुर्भविष्यति । यदि न वक्ष्ये; मूढ इति मां परिभवति । तस्मादुभयं परिहृत्य किं नु खलु वक्ष्यामि । भवतु, दृष्टम् । (प्रकाशम्) भो कण्ण ! सुय्ये विअ, चन्दे विअ, हिमवन्ते विअ, सागले विअ, चिट्ठदु दे जसो । [भोः कर्ण ! सूर्य इव, चन्द्र इव, हिमवान् इव, सागर इव, तिष्ठतु ते यशः ।]

कर्णः—भगवन् ! किं न वक्तव्यं दीर्घायुर्भवेति । अथवा एतदेव शोभनम् । कुतः—

Śakra—(*To himself*) Now what should I say [to him]. If I say 'Long life to you' he will live long [and my object of coming will be frustrated]. If I do not say anything, he will despise me as a fool. So what shall I say execpting these two ? Well, I have it. (*Aloud*) O Karṇa ! eternal as the sun, the moon, the Himalayas and the ocean, be your fame.

Karṇa—Venerable Sir ! Why should you not say 'Long life to you ?' Or rather this in itself is good; because —

शक्र—(मन ही मन) अब मुझे क्या कहना चाहिए यदि 'दीर्घायु हो'—ऐसा कहते हैं तो यह चिरंजीवी हो जायगा, यदि [कुछ भी] नहीं कहते है तो मुझे मूर्ख समझेगा । तो [फिर इन] दोनो को ही छोड़कर मैं क्या कहूँ । अच्छा देखा जायगा । (प्रकाश में) हे कर्ण ! सूर्य की भाँती, चन्द्र हिमवान् एवं सागर की भांति यश हो ।

कर्ण—हे भगवन् ! 'दीर्घायु हो' ऐसा क्यों नहीं कहा ? अथवा यही सुन्दर है; क्योंकि—

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो
भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः।
तस्मात् प्रजापालनमात्रबुद्ध्या
हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥ १७ ॥

Virtue should be persued by man with great effort, (because) king's fortunes are fickle like a serpent's tongue. (Therefore, one should rule) guided by the thought of only protecting his subjects; the good qualities endure when the bodies are slain. [17]

[प्रस्तुत श्लोक में कर्ण के द्वारा सांसारिक-सम्पत्ति से यश की विशिष्टता प्रतिपादित की जा रही है :—]

अन्वय—पुरुषेण, यत्नैः, धर्मः, साध्य; हि, नृप-श्रियः, भुजङ्ग-जिह्वा [इव] चपला, [सन्ति]। तस्मात्, प्रजा-पालन-मात्र-बुद्ध्या, (राज्यम्, कर्तव्यम्), (यतः) देहेषु, हतेषु, गुणाः, धरन्ते ॥ १७ ॥

पदार्थ—पुरुषेण = पुरुष के द्वारा; यत्नैः = प्रयत्नपूर्वक; धर्मः=धर्म [अर्थात् शास्त्रोक्त कर्म अथवा पुण्य ही]; साध्यः = साधित (= सञ्चित) होना चाहिए। हि = क्योंकि, नृपश्रियः=राजलक्ष्मी; भुजङ्ग-जिह्वा [इव] चपलाः = सर्प की जीभ के समान चञ्चल; [सन्ति=है]। तस्मात्=इसलिए, प्रजा-पालन-मात्र-बुद्ध्या= केवल प्रजा-पालन की [ही] बुद्धि से [राज्य करना चाहिए। अर्थात् राज्य-संचालन धर्मबुद्धि से करना चाहिए भोग बुद्धि से नहीं । क्योंकि]; देहेषु = [भौतिक] शरीर के; हतेषु=विनष्ट हो जाने पर; गुणाः=[दया दाक्षिण्य आदि] सद्गुण ही धरन्ते = शेष रह जाते हैं। अर्थात् यश के रूप से अलौकिक-शरीर ही स्थायी है किन्तु भौतिक शरीर नहीं ॥ १७ ॥

मनुष्य को चाहिए कि मात्र धर्म का ही यत्नपूर्वक साधन करे क्योंकि राज-लक्ष्मी तो सर्प की जिह्वा की भाँति चञ्चल है। इसलिए [राजा को चाहिए कि] केवल प्रजा के पालन की ही बुद्धि से [शासन करे क्योंकि भौतिक] शरीर के विनष्ट हो जाने के बाद केवल [दया दाक्षिण्य आदि यशः शरीर रूप] गुण ही शेष रह जाते हैं ॥ १७ ॥

भगवन् ! किमिच्छसि; किमहं ददामि ?

शक्रः—महत्तरं भिक्खं याचेमि । [महत्तरां भिक्षां याचे ।]

कर्णः—महत्तरां भिक्षां भवते प्रदास्ये । श्रूयन्तां मद्विभवाः—

गुणवदमृतकल्पक्षीरधाराभिवर्षि
द्विजवर ! रुचितं ते तृप्तवत्सानुयात्रम्[1] ।

१. 'वत्सानुपातम्—इति वा पाठः '

O Venerable Sir ! what do you want ? What shall I give ?

Śakra—I request you for a greater alm.

Karṇa—A greater alm will I bestow on you. Please listen about the wealth that I have [and please choose].

If it pleases you, O best of Brāhmaṇas ! I can give you a thousand cows right worthy of supplication by the suppliants,

[प्रस्तुत श्लोक और इसके बाद के दो श्लोकों में कर्ण ने दान देने के लिए क्रमशः गो, अश्व और हस्ति का विकल्प इस प्रकार दिया है :—]

अन्वय—हे द्विज-वर !, गुणवद्-अमृत-कल्प-क्षीर-धाराभिवर्षि, तृप्त-वत्स-अनुयात्रम्, तरुणम्, अधिकम्, अर्थि-प्रार्थनीयम्, पवित्रम्, विहित-कनक-शृङ्गम्, गो-सहस्रम्, [यदि] रुचितम् [स्यात्, तर्हि] ते, ददामि ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे द्विज-वर ! = हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ !, गुणवत्-अमृत-कल्प-क्षीर-धाराभिवर्षि = गुणों से युक्त अमृत-तुल्य दुग्ध की धाराओं की वर्षा करने वाली; तृप्त-वत्स-अनुयात्रम् = [दुग्ध पीकर] तृप्त हुए बछड़ों से अनुगत होती

हे भगवन् ! आप क्या चाहते हैं ? मैं [आपको] क्या दूँ ?

शक्र—बहुत बड़ी भिक्षा मैं चाहता हूँ ।

कर्ण—[ठीक है] आपको बहुत बड़ी भिक्षा दी जायगी [किन्तु] मेरा ऐश्वर्य सुनिए [अर्थात् मेरी सम्पत्ति सुन लो । उसमें से जो चाहिए उसे माँग लो]

हे द्विजश्रेष्ठ ! यदि तुम्हें पसन्द हो तो गुणकारी एवं अमृत के समान मधुर दुग्ध की धाराओं की वर्षा करने वाली, [दुग्ध पीकर] सन्तुष्ट बछड़ों से अनुगत

तरुणमधिकमर्थिप्रार्थनीयं पवित्रं
विहितकनकशृङ्गं गोसहस्रं ददामि ॥ १८ ॥

शक्रः—गोसहस्सं त्ति। मुहुत्तअं खिरं पिबामि। णेच्छामि कण्ण! णेच्छामि। [गोसहस्रमिति। मुहूर्तकं क्षीरं पिबामि। नेच्छामि कर्ण! नेच्छामि।]

कर्णः—किं नेच्छति भवान्! इदमपि श्रूयताम्।

---

pure, with horns tipped with gold, capable of giving streams of excellent milk like nectar and followed by their satisfied calves. [18]

Śakra—A thousand cows! I shall drink milk but it will be just for a moment. No, I do'nt want them Karṇa! I do not want.

Karṇa—So you would not have them. Revered sir! Well! listen to this also.

हुई, तरुणम् = युवती; अधिकम् = विशेष रूप से; अर्थि-प्रार्थनीयम् = याचकों से माँगी जाने वाली; पवित्रम् = पुनीत [अर्थात् जरादि दोष से रहित]; विहित-कनक-शृङ्गम् = स्वर्ण जटित सींगों वाली; गो-सहस्रम् = एक हजार गाएँ; रुचितम् = [यदि] अभिलषित [हों तो]; ते = आपके लिए; ददामि = दे सकता हूँ ॥ १८ ॥

विमर्श—इक्कीसवें श्लोक में जहाँ सर्वोत्कृष्ट देय का विकल्प कर्ण के द्वारा प्रस्तुत किया गया है वहाँ भी 'रुचितम्' का अर्थ अभिलषित है उसी प्रकार यहाँ भी [यद्यपि यह 'गो सहस्रं' का विशेषण हो सकता है तथापि] यह याचक के अभिलाष के लिए ही प्रयुक्त है।

होती हुई, युवती एवं विशेष रूप से याचकों से मांगी जाने वाली, पवित्र तथा स्वर्ण जटित सींगों वाली हजारों गाएं मैं आपको दे सकता हूँ ॥ १८ ॥

शक्र—हजार गाएं! कुछ समय तक दूध पिऊँगा। [किन्तु यह मैं] नहीं चाहता कर्ण! नहीं चाहता।

कर्ण—क्या आप [यह] नहीं चाहते। तो इसे भी सुनिए—

रवितुरगसमानं साधनं राजलक्ष्म्याः
सकलनृपतिमान्यं मान्यकाम्बोजजातम् ।
सुगुणमनिलवेगं युद्धदृष्टापदानं
सपदि बहुसहस्रं वाजिनां ते ददामि ॥ १९ ॥

[If it pleases you] I can give at once thousands of chargers of the honoured Kāmboja breed, esteemed by all monarchs, comparable to the horses of the sun, means of (obtaining) royal fortune, endowed with excellent qualities, swift as the wind and whose heroic deeds have been seen on the battle field. [19]

[दान के लिए द्वितीय विकल्प इस प्रकार है :—]

अन्वय—रवि-तुरग-समानम्, राज-लक्ष्म्याः, साधनम्, सकल-नृपति-मान्यम्, मान्य-काम्बोज-जातम्, सुगुणम्, अनिल-वेगम्, युद्ध-दृष्ट-अपदानम्, वाजिनाम्, सपदि, ते, बहुसहस्रम्, ददामि ॥ १९ ॥

पदार्थ—रवि-तुरग-समानम् = सूर्य के घोड़ों के तुल्य; राजलक्ष्म्याः = राज्यलक्ष्मी के; साधनम् = साधनभूत; सकल-नृपति-मान्यम् = समस्त राजाओं से प्रशंसित; मान्य-काम्बोज-जातम् = प्रशंसनीय काबुली घोड़े [काम्बोज अर्थात् काबुल में उत्पन्न घोड़े अत्यन्त उत्कृष्ट माने जाते हैं] सुगुणम्=समीचीन गुणों से युक्त; अनिल-वेगम् = वायु के समान वेग वाले; युद्ध-दृष्ट-अपदानम् = संग्राम में देखे गए अभिनन्दनीय कर्म वाले; वाजिनाम् = घोड़े; सपदि = शीघ्र ही; ते = आपके लिए; बहुसहस्रम् = कई हजार; ददामि = दे सकता हूँ ॥ १९ ॥

सूर्य के अश्वों के समान, राज्यश्री के साधनभूत, अनेक राजाओं से प्रशंसित, उत्तम एवं कम्बोज देश के कुल में उत्पन्न, सुन्दर गुणों से युक्त, वायु के समान तीव्र वेग वाले तथा संग्राम में देखे गए अभिनन्दनीय कर्म वाले हजारों घोड़े मैं शीघ्र ही आपको दे सकता हूँ ॥ १९ ॥

शक्रः—अस्स त्ति। मुहुत्तअं आलुहामि। णेच्छामि कण्ण! णेच्छामि। [अश्व इति। मुहूर्तकमारोहामि। नेच्छामि कर्ण! नेच्छामि।]

कर्णः—किं नेच्छति भगवान्। अन्यदपि श्रूयताम् :—

मदसरितकपोलं षट्पदैः सेव्यमानं
गिरिवरनिचयाभं मेघगम्भीरघोषम्।

Śakra—Horses! I ride but for a short time. No, I do'nt want them Karṇa! I do not want.

Karṇa—So you would not have them, Revered sir! Well! listen to this also —

[If it pleases you] I can give you countless herds of elephants with ichor streaming down their temples, with the bees

[दान के लिए तीसरा विकल्प इस प्रकार है :—]

अन्वय—मद-सरित-कपोलम्, षट्पदैः, सेव्यमानम्, गिरि-वर-निचय-आभम्, मेघ-गम्भीर-घोषम्, सित-नख-दशनानाम्, रिपु-समर-विमर्दम् वारणानाम्, एतत्, अनेकम्, वृन्दम्, ददामि ॥ २० ॥

पदार्थ—मद-सरित-कपोलम् = मद की नदी बहाने वाले गण्डस्थल से युक्त; षट्पदैः, सेव्यमानम् = भ्रमरों से सेवित; गिरिवर-निचयाभम् = श्रेष्ठ पर्वतों के समूह की आभा वाले; मेघ-गम्भीर-घोषम् = मेघ के समान गम्भीर घोष वाले; सित-नख-दशनानाम् = श्वेत नखों और दाँतों से युक्त; रिपु-समर-विमर्दम् = संग्राम में शत्रुओं का मर्दन करने वाले; वारणानाम् = हाथियों का; एतत् = यह; अनेकम् = अनेक; वृन्दम् = समूह; ददामि = दे सकता हूँ ॥२०॥

शक्र—अश्व! कुछ काल तक चढ़ूँगा। [किन्तु यह मैं] नहीं चाहता कर्ण! नहीं चाहता।

कर्ण—हे भगवन्! क्या [इसे भी आप नही चाहते? अच्छा तो] दूसरा कुछ भी सुनिए।

मद की नदी जिनके कपोलों से बह रही हैं और जिनपर भ्रमर मँडरा रहे हैं ऐसे श्रेष्ठ पर्वत के समूह के समान आभा वाले, मेघ के समान गम्भीर घोष वाले,

सितनखदशनानां[1] वारणानामनेकं
रिपुसमरविमर्दं वृन्दमेतद् ददामि ॥ २० ॥

शक्रः—गअ त्ति। मुहुत्तअं आलुहामि। णेच्छामि कण्ण! णेच्छामि। [गज इति। मुहूर्तकमारोहामि। नेच्छामि कर्ण! नेच्छामि।]

कर्णः—किं नेच्छति भवान्। अन्यदपि श्रूयताम्। अपर्याप्तं कनकं ददामि।

१. °नाग्रं—इति वा पाठः।

hovering round them, resembling a range of lofty hills and deeply roaring like clouds, with white nails and tusks and quite capable of routing the enemies in war. [20]

Śakra—Elephants! I ride but for a short time. No, Karṇa! I do'nt want them, I do not want.

Karṇa—What! you do not want them. Well! hear this also—I can give you plenty of gold.

विमर्श—प्रस्तुत श्लोक में 'कुञ्जराणामनेकम्' भी कवि के द्वारा कहा जा सकता था किन्तु 'वारणानामनेकम्' ही उचित है क्योंकि 'वारयति शत्रु-बलम्'—जो शत्रु की सेना वारित करता है—यह इसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है। 'वारणं प्रतिषेधे स्याद् वारणस्तु मतङ्गजे—(इति विश्वः ५२-५८) द्र० मेदिनी ४९. ६७।

कोष—वारण—मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी—अमरकोष २. ८. ३४।

श्वेत नखों एवं दाँतों से युक्त तथा संग्राम में शत्रुओं का मर्दन करने वाले अनेक हाथियों का यह समूह आपको दे सकता हूँ ॥ २० ॥

शक्र—हाथी? किञ्चित्काल तक चढ़ूँगा। नहीं चाहता कर्ण, नहीं चाहता।

कर्ण—तो क्या आप इसे भी नहीं चाहते। तो फिर और भी सुनिए। पर्याप्त सुवर्ण देता हूँ।

शक्रः—गच्छिअ गच्छामि। [किंचिद् गत्वा] णेच्छामि कण्ण! णेच्छामि। [गृहीत्वा गच्छामि। नेच्छामि कर्ण ! नेच्छामि।]

कर्णः—तेन हि जित्वा पृथिवीं ददामि।

शक्रः—पुहुवीए किं करिस्सम्। [पृथिव्या किं करिष्यामि।]

कर्णः—तेन ह्यग्निष्टोमफलं ददामि।

शक्रः—अग्गिट्ठोमफलेण किं कय्यं। [अग्निष्टोमफलेन किं कार्यम्।]

कर्णः—तेन हि मच्छिरो ददामि।

शक्रः—अविहा अविहा। [अविहा अविहा]

Śakra—I will take that and go (*going a little*). No, Karṇa, I do not want it.

Karṇa—Then I will conquer the whole earth and give it to you.

Śakra—What shall I do with the earth ?

Karṇa—Then I will give you the merits arising from the Agniṣṭoma Sacrifice.

Śakra—What should I do with the fruits of Agniṣṭoma.

Karṇa—Then I give you my head.

Śakra—Alas ! Alas !

शक्र—[ठीक है] लेकर चला जाऊँगा (कुछदूर जाकर) नहीं [इसे भी] नहीं चाहता, कर्ण ! नहीं चाहता।

कर्ण—तो फिर भूमि जीतकर देता हूँ।

शक्र—पृथ्वी लेकर क्या करूँगा ?

कर्ण—तो फिर अग्निष्टोम-याग का फल देता हूँ।

शक्र—अग्निष्टोम का फल लेकर क्या होगा ?

कर्ण—तो फिर मैं अपना सिर देता हूँ।

शक्र—ईश्वर रक्षा करे, रक्षा करे।

कर्णः—न भेतव्यं न भेतव्यम् । प्रसीदतु भवान् । अन्यदपि श्रूयताम्—

अङ्गैः सहैव जनितं मम देहरक्षा
देवासुरैरपि न भेद्यमिदं सहस्रैः ।
देयं तथापि कवचं सह कुण्डलाभ्यां
प्रीत्या मया भगवते[1] रुचितं यदि स्यात् ॥ २१ ॥

१. भगवतो—इति वा पाठः ।

Karṇa—You should not be afraid, should not be afraid. Be pleased, Revered sir, listen to another alternative.

My armour was born along with my limbs for the protection of my body, which neither thousands of gods nor demons can pierce. I can gladly give it to you, along with my ear-rings, if it pleases you. [21]

[कर्ण याचक ब्राह्मण के सामने कवच और कुण्डल के दान का चौथा और अन्तिम विकल्प इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं :—]

अन्वय—[यद्यपि मम], अङ्गैः, सह-एव, मम, देहरक्षा[र्थं] जनितम् इदम्, सहस्रैः देवासुरैः, अपि, न, भेद्यम्; तथापि यदि, भगवते, रुचितम्, स्यात् [तर्हि], मया, प्रीत्या, कुण्डलाभ्याम्, सह, कवचम् देयम् ॥ २१ ॥

पदार्थ—[यद्यपि मम] अङ्गैः, सहैव = [यद्यपि मेरे] अङ्गों के साथ ही [यह कवच]; मम = मेरे; देहरक्षार्थम् = शरीर की रक्षा के लिए; जनितम् = उत्पन्न हुआ है । इदम् = यह [कवच]; सहस्रैः = हजारों; देव-असुरैः,

कर्ण—डरिए नहीं, डरिए नहीं । [किन्तु] आप प्रसन्न होइए । और दूसरा कुछ भी सुनिए ।

यद्यपि मेरे अङ्गों के साथ ही यह कवच मेरी शरीर रक्षा के लिए उत्पन्न हुआ है । यह [कवच] सहस्रों देवताओं और दानवों से भी अभेद्य है फिर भी यदि आपको यह अभिलषित हो तो मैं प्रसन्नतापूर्वक अपने कवच के साथ कुण्डल को भी आपको दे दूं ? ॥ २१ ॥

शक्रः—(सहर्षम्) देहु, देहु [ददातु, ददातु ।]

कर्णः—(आत्मगतम्) एष एवास्य कामः । किं नु खल्वनेक-कपटबुद्धेः कृष्णस्योपायः । सोऽपि भवतु । धिगयुक्तमनुशोचितुम् । नास्ति संशयः (प्रकाशम्) गृह्यताम् ।

शल्यः—अङ्गराज ! न दातव्यं न दातव्यम् ।

Śakra—(joyfully) Please give it, give it.

Karṇa—(to himself) This was his intention [so, that is what he wanted]. Can it be a trick of Kṛṣṇa who is skilled in intrigues. Let even this be done. Fie ! It is not proper to worry about it. There is no doubt. (*Aloud*) Please, take them.

Śalya—O King of Aṅgas ! you should not give it ; should not give.

अपि = देवताओं और दैत्यों से भी; न भेद्यम् = अभेद्य है । तथापि = तथापि [अर्थात् इस प्रकार की अवस्था होने पर भी; यदि भगवते = यदि आप को; रुचितम्, स्यात् = अभिलषित हो; [तर्हि = तो] मया = मेरे द्वारा; प्रीत्या = प्रसन्नतापूर्वक; कुण्डलाभ्याम्, सह = कुण्डलों के साथ; कवचम् = कवच; देयम् = दिया जा सकता है । अर्थात् यद्यपि इस कवच के द्वारा मेरे शरीर की रक्षा होती है तथापि यदि आपको यही अभीष्ट है तो मैं इसे भी प्रसन्नता के साथ, और ऊपर से दो कुण्डल भी दे सकता हूँ ॥ २१ ॥

कोष—वर्म·····कवचोऽस्त्रियाम्—अमरकोष २. ८. ६४ ।

शक्र—(हर्ष के साथ) दीजिए, दीजिए ।

कर्ण—(मन ही मन) इस [ब्राह्मण] का यही अभीष्ट था । अवश्य ही यह अनेक कपट व्यवहार में रत बुद्धि वाले कृष्ण का ही [निकाला हुआ] उपाय है । [अच्छा तो] वह भी हो । धिक्कार है, यह मैंने अनुचित विचार किया । [इसमें] कोई संशय [की बात] नहीं है । (प्रकाश में) लीजिए ।

शल्य—अङ्गराज ! न दीजिए, न दीजिए ।

कर्णः—शल्यराज ! अलमलं वारयितुम् । पश्य—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्[1]
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ २२ ॥

१. 'ये—इति वा पाठः ।

Karṇa—King Śalya ! do'nt prevent me. Please look here.

Learning comes to nought by mere lapse of time. Firmly-rooted trees fall down [in a storm]. The water collected in reservoirs dries up (in drought). But gifts and sacrifices last for ever. [22]

[दान के महत्त्व का प्रतिपादन कर्ण इस प्रकार करते है :—]

अन्वय—काल-पर्ययात् , शिक्षा, क्षयम् , गच्छति, सुबद्धमूलाः, पादपाः, निपतन्ति । जलस्थानगतम् , जलम्, च, शुष्यति । च [किन्तु यत्] हुतम् , च, दत्तम् , तथैव, तिष्ठति ॥ २२ ॥

पदार्थ—काल-पर्ययात् = समय के परिवर्तन से, शिक्षा = सीखी हुई विद्या, क्षयम् = विनाश को; गच्छति = प्राप्त हो जाती है । सुबद्ध-मूलाः = सुदृढ़ मूल वाले; पादपाः = वृक्ष [भी]; निपतन्ति = [समय बदलने पर] गिर पड़ते हैं । जलस्थानगतम् = जलाशय में गया हुआ; जलम् , च = जल भी; शुष्यति = [काल परिवर्तन से गर्मी आने पर] सूख जाता है । [किन्तु

कर्ण—शल्यराज बस, बस, अब मत रोको । देखो—

उपार्जित विद्या किंचित् काल के व्यतीत होने पर नष्ट हो जाती है, और मजबूत जड़ वाले वृक्ष भी [समय आने पर] गिर पड़ते हैं । जल भी तालाब में जाकर [काल परिवर्तन से ग्रीष्म ऋतु में] सूख जाता है । किन्तु हवनादि किया हुआ पदार्थ तथा दान में दिया हुआ पदार्थ ज्यों का त्यों बना रहता है [अर्थात् पुण्य का क्षय नहीं होता] ॥ २२ ॥

तस्मात् गृह्यताम् । (निकृत्य ददाति) ।

शक्रः—(गृहीत्वा, आत्मगतम्) हन्त गृहीते एते । पूर्वमेवा [हम्] र्जुनविजयार्थं सर्वदेवैर्यत् समर्थितं तदिदानीं मयानुष्ठितम् । तस्मादहमप्यैरावतमारुह्यार्जुनकर्णयोर्द्वन्द्वयुद्धं[1] पश्यामि । (निष्क्रान्तः ।)

शल्यः—भो अङ्गराज ! वञ्चितः खलु भवान् ।

कर्णः—केन ।

---

१. 'युद्धविशेषम्—इति वा पाठः ।

So, take it, (*cuts it off and gives*).

Śakra—(*accepting it; to himself*) Oh ! good ! I have taken these. I have now accomplished what was already approved by all the gods as essential for Arjuna's victory. So I shall also mount (my elephant) Airāvata and behold the combat between Arjuna and Karṇa.

(*EXIT*)

Śalya—O King of Aṅga ! you are cheated.

Karṇa—By whom ?

इसलिए लीजिए (निकाल कर दे देते हैं)

शक्र—(लेकर, मन ही मन) ओह ! यह तो ले लिया गया । इस प्रकार पहले ही मैंने अर्जुन की विजय के लिए जो सब देवताओं से प्रतिज्ञा की थी वह मेरे द्वारा आज अनुष्ठित हुई । इसलिए मैं ऐरावत पर चढ़कर कर्ण और अर्जुन के युद्ध को देखूँगा ।

(चला जाता है)

शल्य—हे अङ्गाधिप ! आप ठग लिए गए ।

कर्ण—किसके द्वारा ?

शल्यः—शक्रेण ।

कर्णः—न खलु । शक्रः खलु मया वञ्चितः । कुतः ?

अनेकयज्ञाहुतितर्पितो द्विजैः
किरीटवान् दानवसंघमर्दनः ।
सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलि-
र्मया कृतार्थः खलु पाकशासनः ॥ २३ ॥

Śalya—By Indra.

Karṇa—Not at all. It is Indra who has been cheated by me; because—

Propitiated by thousands of twice-borns (Brāhmaṇas) with their oblations in innumerable sacrifices (i.e. they beg favours of him), wearing a crown, destroyer of the hosts of demons, Indra whose fingers are roughened by patting the divine elephant has indeed been put under obligation by me. [23]

यत्=परन्तु जो] हुतम् = हवन किया गया है; च = तथा; दत्तम् = दान दिया गया है; तथैव = [विना विकार के] ज्यों का त्यों; तिष्ठति = वना रहता है । अर्थात् यतः दान ही प्रशस्त कर्म है इसलिए तुम्हारा रोकना व्यर्थ है ॥ २२ ॥

[कर्ण अपने दान की चरितार्थता इस प्रकार वतलाते हैं :—]

अन्वय—द्विजैः, अनेक-यज्ञ-आहुति-तर्पितः, किरीटवान्, दानव-संघ-मर्दनः, सुर-द्विप-आस्फालन-कर्कश-अङ्गुलिः, पाकशासनः, खलु [अद्य], मया, कृतार्थः ॥ २३ ॥

शल्य—इन्द्र से ।

कर्ण—नहीं, इन्द्र ही मुझ से ठगे गए हैं ।

क्योंकि—

ब्राह्मणों के अनेक यज्ञों के फल से तृप्त, मुकुट को धारण करने वाले, दैत्यों के समूह के विनाशक और ऐरावत को थपथपाने से कठोर अंगुलियों वाले इन्द्र (आज) अवश्य ही मेरे द्वारा कृतार्थ हुए हैं ॥ २३ ॥

(प्रविश्य ब्राह्मणरूपेण)

देवदूतः—भोः कर्ण ! कवचकुण्डलग्रहणाज् जनितपश्चात्तापेन पुरंदरेणानुगृहीतोऽसि । पाण्डवेष्वेकपुरुषवधार्थममोघमस्त्रं विमला नाम शक्तिरियं प्रतिगृह्यताम् ।

कर्णः—धिग्, दत्तस्य न प्रतिगृह्णामि ।

(*Entering, disguised as a Brāhmaṇa*)

Messenger of the gods—O Karṇa ! you are favoured by Purandara (= Indra) who is now remorseful for taking your armour and ear-rings. Please, take this spear, named Vimalā, an unfailing weapon to slay only one of the Pāṇḍavas.

Karṇa—Fie, I can not take (anything) from one to whom I have given.

पदार्थ—द्विजैः = ब्राह्मणों के द्वारा; अनेक-यज्ञ-आहुति-तर्पितः = अनेक यज्ञों की आहुतियों से तृप्त; किरिटवान् = मुकुट धारण करने वाले; दानव-संघ-मर्दनः = दैत्यों के समूह का मर्दन करने वाले; सुरद्विप-आस्फालन-कर्कश-अङ्गुलिः = देवताओं का हाथी [अर्थात् ऐरावत] के प्रताड़ित करके संचालन के कारण कठोर अङ्गुलियों वाले; पाकशासनः = पाक-नामक दैत्य का शासन करने वाले अर्थात् इन्द्र; खलु = अवश्य ही; [अद्य] मया = [आज] मेरे द्वारा; कृतार्थः = कृतकृत्य हुए हैं । अर्थात् उपकृत किए गए हैं ॥ २३ ॥

कोष—पाकशासन—इन्द्रो मरुत्वान् मघवा विडौजाः पाकशासनः—अमरकोष १. १. ४१ ।

(ब्राह्मण के रूप में प्रवेश करके)

देवदूत—हे कर्ण ! कवच और कुण्डल लेने के पश्चात्ताप से युक्त इन्द्र के द्वारा तुम अनुगृहीत हुए हो । पाण्डवों में से एक पुरुष के वध के लिए जो अस्त्र अमोघ है—ऐसी विमला नाम की इस शक्ति को ग्रहण करो ।

कर्ण—धिक्कार है । मैं दानके बदले में दान नहीं लेता हूँ ।

देवदूतः—ननु ब्राह्मणवचनाद् गृह्यताम् ।
कर्णः—ब्राह्मणवचनमिति । न मयातिक्रान्तपूर्वम् । कदा लभेय ।
देवदूतः—यदा स्मरसि तदा लभस्व ।
कर्णः—बाढम् । अनुगृहीतोऽस्मि । प्रतिनिवर्ततां भवान् ।
देवदूतः—बाढम् । (निष्क्रान्तः ।)
कर्णः—शल्यराज ! यावद्रथमारोहावः ।
शल्यः—बाढम् । (रथारोहणं नाटयतः ।)
कर्णः—अये शब्द इव श्रूयते । किं नु खल्विदम् ।

Messenger of the gods—Please take it at a Brāhmaṇa's behest.
Karṇa—At a Brāhmaṇa's bidding ? That has never been declined by me. [Then] When shall I get it ?
Messenger of the gods—You will get it whenever you remember or think ofi t.
Karṇa—Be it so. I am obliged. You may return.
Messenger of the gods—Very well.
(*EXIT*)
Karṇa—O King Śalya ! Then let us mount the chariot.
Śalya—As you like ! (They act as if mounting the chariot).
Karṇa—Ah ! I hear some sound. What can it be ?

देवदूत—तो ब्राह्मण वचन के कारण ही ले लो ।
कर्ण—ब्राह्मण का वचन ? मेरे द्वारा पहले कभी नहीं टाला गया । [अतः यह शक्ति] कब मिलेगी ?
देवदूत—जब स्मरण करोगे; तभी मिलेगी ।
कर्ण—ठीक है । मैं आप से अनुगृहीत हूँ । अब आप लौट जायें ।
देवदूत—बहुत अच्छा । (चला जाता है)
कर्ण—शल्यराज ! तब तक रथ पर चढ़ा जाय ।
शल्य—बहुत अच्छा ।
(रथ पर चढ़ने का नाटय करते हैं)
कर्ण—अरे ! कुछ आवाज सी सुनाई पड़ रही है । यह क्या है ?

शङ्खध्वनिः प्रलयसागरघोषतुल्यः
कृष्णस्य वा न तु भवेत् स तु फाल्गुनस्य ।
नूनं युधिष्ठिरपराजयकोपितात्मा,
पार्थः करिष्यति यथाबलमद्य युद्धम् ॥ २४ ॥

This sound of a conch-shell is like the roar of ocean at the time of universal destruction. It may be (the conch) of Kṛṣṇa or not, but it must be of Phālguna (= Arjuna). Indeed, Arjuna, enraged by the defeat of Yudhiṣṭhira, will fight to-day to the best of his valour. [24]

[युद्धस्थल में शङ्खध्वनि सुनकर कर्ण यह निर्णय करते हैं कि यह कृष्ण की है या अर्जुन द्वारा की जा रही है :—]

अन्वय—प्रलय-सागर-घोष-तुल्यः, [अयम्] शङ्ख-ध्वनिः, कृष्णस्य वर्तते वा न; सः तु फाल्गुनस्य भवेत् । नूनम् युधिष्ठिर-पराजय-कोपितात्मा, पार्थः, अद्य, यथाबलम्, युद्धं, करिष्यति ॥ २४ ॥

पदार्थ—प्रलय-सागर-घोष-तुल्यः = प्रलयकालीन सागर की गर्जन के समान; [अयम् = यह]; शङ्ख-ध्वनि = शङ्ख की ध्वनि; कृष्णस्य [वर्तते] = कृष्ण की [है]; वा न = अथवा नहीं । सः तु = [किन्तु] वह तो; फाल्गुनस्य = अर्जुन की, भवेत् = [जरूर] होगी । नूनम् = अवश्य ही; युधिष्ठिर-पराजय-कोपितात्मा = युधिष्ठिर की पराजय से क्रोधित चित्त वाले, पार्थः = पृथा के पुत्र अर्जुन; अद्य = आज, यथाबलम् = सामर्थ्यानुसार; युद्धं, करिष्यति = युद्ध करेगा ॥ २४ ॥

समास—यथाबलम्—बलमनतिक्रम्य (अव्ययीभाव) ।

यह प्रलयकालीन समुद्र के गर्जन के समान [अत्यन्त गम्भीर] शंख-ध्वनि कृष्ण की है अथवा नहीं; किन्तु वह तो अर्जुन की होगी । अवश्य ही युधिष्ठिर की पराजय से क्रोधित चित्त वाले होकर अर्जुन [मुझ से] आज यथाशक्ति युद्ध करेंगे ॥ २४ ॥

शल्यराज ! यत्रासावर्जुनस्तत्रैव चोद्यतां मम रथः ।

शल्यः—बाढम् ।

(भरतवाक्यम्)

सर्वत्र सम्पदः सन्तु नश्यन्तु विपदः सदा ।
राजा राजगुणोपेतो भूमिमेकः प्रशास्तु नः ॥ २५ ॥

O King Śalya ! Please drive any chariot to that very place where Arjuna may be.

Śalya—As you like. [drives the chariot on].

(Epilogue)

May wealth be everywhere and may calamities disappear for ever. May our king (endowed) with royal virtues alone govern the whole earth. [25].

[प्रस्तुत श्लोक में प्रधान नट के द्वारा प्राणिमात्र के कल्याण की कामना इस प्रकार की गई है:—]

अन्वय—सर्वत्र, सम्पदः, सन्तु । विपदः, सदा, नश्यन्तु । नः, राज-गुण-उपेतः, राजा, एकः, भूमिम्, प्रशास्तु ॥ २५ ॥

पदार्थ—सर्वत्र = [सभी दिशाओं में] चारों ओर; सम्पदः = सम्पत्तियाँ; सन्तु = हों । विपदः = विपत्तियाँ; सर्वदा = सदा के लिए; नश्यन्तु = नष्ट हो जायँ । नः = हमारे; राज-गुण-उपेतः = राजा के गुणों से युक्त; राजा = नरेश; एकः = अकेले ही; भूमिम् = [समस्त] पृथिवी का; प्रशास्तु = शासन करें ॥ २५ ॥

शल्यराज ! वहीं मेरे रथ को प्रेरित करो; जहाँ वह अर्जुन हो ।

शल्य—अच्छा ।

(भरत-वाक्य)

सर्वत्र सम्पत्ति होवे, विपत्तियों का सर्वथा विनाश हो और राजाओं के गुण से युक्त हमारे राजा अकेले ही समस्त पृथिवी का शासन करें ॥ २५ ॥

(निष्क्रान्तौ)

॥ कर्णभारमवसितम्[1] ॥

१. कवचाङ्कं समाप्तम्—इति वा पाठः ।

(*EXIT* both)

Here ends the [English translation of] *Karṇabhāra.*

विमर्श—भरतवाक्य का दो अर्थ इस प्रकार हो सकता है—

(१) भरतस्य परित्यक्तानुकार्यभावस्य नर्तकस्य वाक्यं श्लोकाशीः । अथवा

(२) भरतो नाम नाट्यशास्त्राचार्यः, तस्य भरतस्य सम्मानार्थं प्रयुक्तं वाक्यं भरतवाक्यम् ।

इत्थं विचिन्त्य नवरूपककर्णभार-
मालोच्य वस्तु परिभाव्य कविप्रबन्धान् ।
श्रद्धानतेन शिरसा पितरं नतोऽसौ
रामं कुबेरसहितं तनयस्तदीयः ॥

(दोनों चले जाते हैं)

इस प्रकार कर्णभार नाटक की 'सरला' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥

इस प्रकार भासकृत कर्णभार का, महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय (भूतपूर्व साहित्यविभागाध्यक्ष, काशीहिन्दूविश्वविद्यालय और वाराणसेय संस्कृतविश्वविद्यालय) के आत्मज डा० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी और अंग्रेजी भाष्य पूर्ण हुआ ॥

परिशिष्ट १

कर्णभारस्थश्लोकानुक्रमणी

	श्लोकाङ्काः	पृष्ठाङ्काः
अङ्गैः सहैव जनितम्	२१	३६
अत्युग्रदीप्तिविशदः	४	७
अनेकयज्ञाहुति°	२३	४०
अन्योन्यशस्त्रविनिपात°	६	९
अयं स कालः	८	११
इमे हि दैन्येन निमीलितेक्षणाः	११	१९
इमे हि युद्धेषु	१३	२१
करितुरगरथस्थैः	३	५
कृत्ते वज्रमुखेन नाम	१०	१७
गुणवदमृतकल्प°	१८	३०
धर्मो हि यत्नैः	१७	२९
नरमृगपति°	१	२
पूर्वं कुन्त्यां समुत्पन्नः	७	१०
मदसरित्कपोलम्	२०	३३
मा तावन्मम	५	८
यातः कृतार्थगणना°	१६	२६
रवितुरगसमानम्	१९	३२
विद्युल्लताकपिल°	९	१३
शङ्खध्वनिः प्रलय°	२४	४३
शिक्षा क्षयं गच्छति	२२	३८
श्रीमानेष न केवलम्	१५	२४
संग्रामे तुमुले जाते	२	४
समरमुखमसह्यम्	१४	२२
सर्वत्र सम्पदः सन्तु	२५	४४
हतोऽपि लभते स्वर्गम्	१२	२०

परिशिष्ट २

कर्णभार के श्लोकों की छन्द-योजना

छन्द का नाम	अक्षर-संख्या	श्लोकाङ्क	योग	लक्षण
अनुष्टुप् (श्लोक)	८	२; ७; १२; २५	४	श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥
उपजाति	११	१३; १७	२	स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । } उपजाति
वंशस्थ	१२	८; २२; २२; २३	४	उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । } उपजाति
प्रहर्षिणी	१३	५	१	जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।
वसन्ततिलका	१४	४; ६; ९; १६; २१; २४	६	त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् । उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।
मालिनी	१५	१; ३; १४; १८; १९; २०	६	ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।
शार्दूलविक्रीडित	१९	१०; १५	२	सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।
			२५	

परिशिष्ट ३

कर्णभार नाटक में आए हुए वृत्तों का लक्षण

अनुष्टुप्—

अक्षर संख्या ८ + ८ + ८८ + = ३२

अनुष्टुप् (=श्लोक) के कई प्रकार हैं। सामान्यतः अनुष्टुप् के पहले और तीसरे पाद का सातवाँ अक्षर गुरु तथा दूसरे और चौथे पाद का सातवाँ अक्षर लघु होता है। चारों पादों में पाँचवाँ अक्षर लघु होता है। आठ-आठ अक्षर का एक एक पाद होता है।

उपजाति—

अक्षर संख्या ११ + ११ + ११ + ११ = ४४

उपजाति छन्द इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के मिश्रण से बनता है। अर्थात् किसी चरण में छन्द इन्द्रवज्रा के लक्षणानुसार होता है और किसी में उपेन्द्रवज्रा के लक्षण के अनुसार। इन्द्रवज्रा में ग्यारह वर्ण होते हैं। दो तगण, एक जगण और दो गुरु अक्षर। उपेन्द्रवज्रा भी ग्यारह अक्षर का होता है एक जगण, एक तगण, एक जगण और दो गुरु अक्षर।

वंशस्थ—

अक्षर संख्या १२ + १२ + १२ + १२ = ४८

वंशस्थ में बारह-बारह वर्णों के चार पाद होते हैं। एक जगण, एक तगण, एक जगण और एक रगण।

प्रहर्षिणी—

अक्षर संख्या १३ + १३ + १३ + १३ = ५२

प्रहर्षिणी छन्द में तेरह वर्ण के चार पाद होते हैं। एक मगण, एक नगण, एक जगण, एक रगण और एक गुरु वर्ण। इसमें ३ और १० पर यति होती है।

वसन्ततिलका—

अक्षर संख्या १४ + १४ + १४ + १४ = ५६

इस छन्द में १४ अक्षर के चार पाद होते हैं। जिसमें तगण, मगण, जगण, पुनः जगण तदनन्तर दो गुरु हों, उसको 'वसन्ततिलका' कहते हैं।

मालिनी—

अक्षर संख्या १५ + १५ + १५ + १५ = ६०

इस छन्द में पन्द्रह वर्ण के चार पाद होते हैं, दो नगण, एक मगण, दो यगण होता है। ८ और ७ पर इस छन्द में यति होती है।

शार्दूलविक्रीडित—

अक्षर संख्या १९ + १९ + १९ + १९ = ७६

इस छन्द में १९ अक्षर के चार पाद होते हैं।

जिस छन्द में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण पुनः तगण तदनन्तर एक गुरु हो, उसको शार्दूलविक्रीडित कहते हैं। इसमें बारह और सात पर यति होती है।

परिशिष्ट ४

कर्णभार में सूक्ति या सुभाषित

१. धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो
भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः।
तस्मात् प्रजापालनमात्रबुद्धया
हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥ १७ ॥

२. धिगयुक्तमनुशोचितुम्। कर्णभार पृ० ३७

३. शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥ २२ ॥

४. हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वाऽपि लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥ १२ ॥

परिशिष्ट ५

कर्णभारस्थ शब्द-विमर्श

अङ्ग—(पृ० ३) संबोधक अव्यय है जिसका अर्थ है 'अच्छा' ; 'अच्छा ! श्रीमान्' निस्सन्देह, सच, हाँ। कोशकारों ने इसके निम्नांकित अर्थ बताए हैं—

क्षिप्रे च पुनरर्थे च सङ्गमासूययोस्तथा।
हर्षे सम्बोधने चैव ह्यङ्गशब्दः प्रयुज्यते ॥

अङ्ग—(पृ० ३) एक देश का नाम, जिसके शासक कर्ण थे। यह प्रदेश बंगाल के वर्तमान भागलपुर के आसपास स्थित है।

आर्यमिश्र—(पृ० ३) आर्य—आदरणीय, सम्माननीय, कुलीन (महाकुल-कुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः-इत्यमरः)। इस शब्द में निहित भाव इस प्रकार है—

कुलं शीलं दया दानं सत्यं धर्मः कृतज्ञता।
अद्रोह इति येष्वेतत्तानार्यान् संप्रचक्ष्यते ॥
कर्त्तव्यमाचरन् काममकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे स तु आर्य इति स्मृतः ॥

इस शब्द का प्रयोग नाटकों में प्रायः सम्मानसूचक विशेषण के रूप में और सम्बोधन की आदरपूर्ण पद्धति में होता है। कभी कभी यह शब्द 'मिश्र' के साथ प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ भी पूज्य या आदरणीय है। किन्तु 'आर्यमिश्र' यह समास्त-पद सदा बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है ('पूज्ये मिश्रवचनं नित्य-बहुवचनान्तम्')।

नागकेतुः—(पृ० ६) दुर्योधन की ध्वजा पर हाथी का चिह्न होने के कारण इन्हें नागकेतु के नाम से अभिहित किया गया है। महाभारत में श्लोक इस प्रकार है—महान् दुर्योधन स्यासीत् नागो मणिमयो ध्वजः।

(महाभा० भीष्म पर्व १७.२६)

फाल्गुन—(पृ० ४३) अर्जुन का विशेषण। महाभारत में अर्जुन के इस नाम का कारण इस प्रकार अभिहित है—

उत्तराभ्यां फल्गुनीभ्यां नक्षत्राभ्यामहं दिवा।
जातो हिमवतः पृष्ठे तेन मां फाल्गुनं विदुः॥
(महाभा० वि० पर्व ४४ अ०)

रणशिरसि—(पृ० ११) संग्राम के मध्य में। तु० ऊरुभङ्ग २७।

रिपुसमरविमर्दम्—(पृ० ६४) शत्रुसेना का मर्दन करने वाले। रिपुसमरविमर्दं मानवीर्यप्रदीप्तम्··· (तु० ऊरुभङ्ग ३९)।

वज्रमुख—(पृ० १७) कृमि विशेष का नाम है। वज्र के समान इसका मुख होता है। महाभारत में इसे अलर्क नाम से अभिहित किया गया है। यहाँ इसका स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

अष्टपादं तीक्ष्णदंष्ट्रं सूचीभिरिव संवृतम्।
रोमभिः सन्निरुद्धाङ्गमलर्कं नाम नामतः॥
(महाभा० शा० पर्व ३. १३)

उस कृमि के आठ पैर थे और तीखी दाढ़ें थी। सूई जैसी चुभने वाली रोमावलियों से उसका सारा शरीर भरा एवं रुँधा हुआ था। वह अलर्क नाम से प्रसिद्ध कीड़ा लार, मेदा, मांस और रक्त का आहार करने वाला एक भयानक कीड़ा था जिसका स्पर्श (डंक मारना) बड़ा ही भयंकर था। संभवतः यह बिच्छू रहा हो।

सप्तच्छद—(पृ० १९) यह एक प्रकार का वृक्ष है जिसके प्रत्येक काण्ड पर सात पत्ते होते हैं। इसीलिए इसे सप्तपर्ण या विषमच्छद भी कहते हैं। (सप्तपर्णो विशालत्वक शारदो विषमच्छदः—अमरकोष २. ४. २३)। लोक में इसको छातिम या छितवन के नाम से अभिहित किया जाता है। इसके कट जाने से दूध निकलता है, जिसकी बहुत ही तीव्र गन्ध होती है। इसीलिए जो बहुत मद वाले अच्छे हाथी होते हैं उनकी उपमा कवियों ने इसी वृक्ष के क्षीर की गन्ध से दी है। जैसे कालिदास ने रघुवंश में—सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहम्··· (रघु० ५. ४८)। और—प्रसवैः सप्तपर्णानां मदगन्धिभिराहतः (रघु० ४. २३)।

सुरद्विपा—(पृ० ४०) इसी प्रकार का प्रयोग कालिदास ने भी किया है—
(१) हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुली। (रघु० ३.५५)
(२) ऐरावतस्फालन कर्कशेन हस्तेन पस्पर्श तदङ्गमिन्द्रः ॥ (कुमार० ३.२२)

हतेषु देहेषु—(पृ० २९) इसी प्रकार का श्लोक पञ्चरात्र में भी आया हैं—नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते ॥ (पञ्चरात्र १. २३.)

हतोऽपि लभते—(पृ० २०) इसी प्रकार का श्लोक पञ्चरात्र में भी महाकवि भास ने लिखा है—धनुरुपनय शीघ्रं···निधनमपि यशः स्यान्मोक्षयित्वा तु धर्मः (पञ्चरात्र २. ५)। यदि युद्ध में मृत्यु हुई तो यश मिलेगा और यदि [गायों को] छुड़ा सका तो धर्म ही होगा।

इस भाव की प्रेरणा भास को महाभारत [गीता] से ही प्राप्त हुई है जो इस प्रकार है—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ गीता २. ३७

हे अर्जुन ! यदि युद्ध में मृत्यु हुई तो स्वर्ग प्राप्त करोगे और यदि विजय प्राप्त हुई तो पृथ्वी का भोग करोगे। अतः युद्ध के लिए निश्चय करके उठ खड़े होओ।

यह सभी महाभारत के इस श्लोक से प्रभावित है—

जयो वधो वा संग्रामे धात्राऽऽदिष्ट सनातनः।
स्वधर्मो क्षत्रियस्येव कार्पण्यं न प्रशस्यते ॥
(महाभा० उद्योग पर्व ७३. ४)

हृदयपरितापः—(पृ० ६) प्रस्तुत स्थल में हृदय का तात्पर्य मन से है, और मन के भाव मुख मण्डल से परिलक्षित होने के कारण हृदय परिताप का अर्थ मानसिक संताप या क्षोभ अर्थात् चिन्ताकुलित चित्त है।

फाल्गुन—(पृ० ४३) अर्जुन का विशेषण। महाभारत में अर्जुन के इस नाम का कारण इस प्रकार अभिहित है—

उत्तराभ्यां फल्गुनीभ्यां नक्षत्राभ्यामहं दिवा।
जातो हिमवतः पृष्ठे तेन मां फाल्गुनं विदुः॥
(महाभा० वि० पर्व ४४ अ०)

रणशिरसि—(पृ० ११) संग्राम के मध्य में। तु० ऊरुभङ्ग २७।

रिपुसमरविमर्दम्—(पृ० ६४) शत्रुसेना का मर्दन करने वाले। रिपुसमरविमर्दं मानवीर्यप्रदीप्तम्··· (तु० ऊरुभङ्ग ३९)।

वज्रमुख—(पृ० १७) कृमि विशेष का नाम है। वज्र के समान इसका मुख होता है। महाभारत में इसे अलर्क नाम से अभिहित किया गया है। यहाँ इसका स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

अष्टपादं तीक्ष्णदंष्ट्रं सूचीभिरिव संवृतम्।
रोमभिः सन्निरुद्धाङ्गमलर्कं नाम नामतः॥
(महाभा० शा० पर्व ३. १३)

उस कृमि के आठ पैर थे और तीखी दाढ़ें थी। सूई जैसी चुभने वाली रोमावलियों से उसका सारा शरीर भरा एवं रुँधा हुआ था। वह अलर्क नाम से प्रसिद्ध कीड़ा लार, मेदा, मांस और रक्त का आहार करने वाला एक भयानक कीड़ा था जिसका स्पर्श (डंक मारना) बड़ा ही भयंकर था। संभवतः यह बिच्छू रहा हो।

सप्तच्छद—(पृ० १९) यह एक प्रकार का वृक्ष है जिसके प्रत्येक काण्ड पर सात पत्ते होते हैं। इसीलिए इसे सप्तपर्ण या विषमच्छद भी कहते हैं। (सप्तपर्णो विशालत्वक शारदो विषमच्छदः—अमरकोष २. ४. २३)। लोक में इसको छातिम या छितवन के नाम से अभिहित किया जाता है। इसके कट जाने से दूध निकलता है, जिसकी बहुत ही तीव्र गन्ध होती है। इसीलिए जो बहुत मद वाले अच्छे हाथी होते हैं उनकी उपमा कवियों ने इसी वृक्ष के क्षीर की गन्ध से दी है। जैसे कालिदास ने रघुवंश में—सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहम्··· (रघु० ५. ४८)। और—प्रसवैः सप्तपर्णानां मदगन्धिभिराहतः (रघु० ४. २३)।

सुरद्विपा—(पृ० ४०) इसी प्रकार का प्रयोग कालिदास ने भी किया है—
(१) हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुली। (रघु० ३.५५)
(२) ऐरावतस्फालन कर्कशेन हस्तेन पस्पर्श तदङ्गमिन्द्रः ॥ (कुमार० ३.२२)

हतेषु देहेषु—(पृ० २९) इसी प्रकार का श्लोक पञ्चरात्र में भी आया हैं—नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते ॥ (पञ्चरात्र १. २३.)

हतोऽपि लभते—(पृ० २०) इसी प्रकार का श्लोक पञ्चरात्र में भी महाकवि भास ने लिखा है—धनुरुपनय शीघ्रं···निधनमपि यशः स्यान्मोक्षयित्वा तु धर्मः (पञ्चरात्र २. ५)। यदि युद्ध में मृत्यु हुई तो यश मिलेगा और यदि [गायों को] छुड़ा सका तो धर्म ही होगा।

इस भाव की प्रेरणा भास को महाभारत [गीता] से ही प्राप्त हुई है जो इस प्रकार है—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ गीता २. ३७

हे अर्जुन ! यदि युद्ध में मृत्यु हुई तो स्वर्ग प्राप्त करोगे और यदि विजय प्राप्त हुई तो पृथ्वी का भोग करोगे। अतः युद्ध के लिए निश्चय करके उठ खड़े होओ।

यह सभी महाभारत के इस श्लोक से प्रभावित है—

जयो वधो वा संग्रामे धात्राऽऽदिष्ट सनातनः।
स्वधर्मो क्षत्रियस्येव कार्पण्यं न प्रशस्यते ॥
(महाभा० उद्योग पर्व ७३. ४)

हृदयपरितापः—(पृ० ६) प्रस्तुत स्थल में हृदय का तात्पर्य मन से है, और मन के भाव मुख मण्डल से परिलक्षित होने के कारण हृदय परिताप का अर्थ मानसिक संताप या क्षोभ अर्थात् चिन्ताकुलित चित्त है।

Appendix 6

Notes on Textual variations.

P. 9. From the speech of Karṇa अहो नु खलु etc, before the sixth verse to verse eighth the stage direction should be स्वगतम् and प्रकाशम् after the eighth verse, as suggested by Pt. T. G. Shastry in a footnote. I have inserted these stage directions in bracket in the text as they are appropriate in the context. Karṇa may think i. e. say it स्वगत- वैधुर्यमापतति चेतसि युद्धकाले, but this declaration in प्रकाश will not be in keeping with the reputation of Karṇa as a warrior.

P. 16. Of the three readings कतिपयकालातिक्रमे, कतिपयदिवसातिक्रमे and किञ्चित् कालातिक्रमे, the last appears to be most appropriate. As time can not be measured in numbers i. e. one two etc, the reading कतिपयकालातिक्रमे does not appear to be a happy choice.

P. 21. Last line of the thirteenth verse is not very clear as regards अन्वय. Woolner and Laxaman Sarup have, therefore, corrected it as रक्षन्तु मां यद्यप्यरक्षितव्यम्. But the reading अरक्षितव्यम् is not suitable. How can a King pray for protection if he considers himself unworthy of it ? This reading also hampers the metre. The reading रक्षितव्यम् would mean these steeds may protect me if I am worthy of protection.

P. 26. The meaning of the sentance सूर्यणैव निवर्त्यं गच्छन्तु भवन्तः is not very clear and needs elucidation. The clouds are said to be the conveyers of Indra. They are, therefore, ordered to cover the Sun—the projenitor of Karṇa. Indra does not want the Sun to witness the deception of Karṇa.

P. 39. In the speech of Indra °युद्धविशेषम् is better than °द्वन्द्वयुद्धम्. As Karṇa and Arjuna are both warriors of the same stature, the war between them is a special one.